द्वितीय अध्याय

चित्रांकन : अर्थ, स्वरूप एवं शैलियाँ

कलाएँ मनुष्य की सहचरी हैं। वह मानवीय रचना होने के कारण मानव जाति के विकास का प्रतीक है। जिस देश की कला जितनी अधिक विकसित होती है उस देश को उतना ही अधिक सभ्य और सुसंस्कृत समझा जाता है। अपने अस्तित्व और अस्मिता की पहचान के लिए ही मनुष्य ने कला रुपी सहज और जीवंत माध्यम की तलाश की है। वह कला के माध्यम से अपनी सौन्दर्य अनुभूति, हर्ष विषाद के क्षण, उत्कर्ष, उत्कंठा और अपने मन की कोमल भावनाओं को व्यक्त करता आया है। मनुष्य द्वारा किया गया यह रचनात्मक कार्यकलाप लगातार देश काल की सीमा से ऊपर उठकर विकसित होता रहा है। अनेक विद्धानों ने कला के अनेक रूप बताये हैं। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में चौसठ कलाओं का उल्लेख मिलता है जबकि अरस्तु ने कला के तीन भेद माने हैं - ललित कला, आचरण कला, उपयोगी कला। सामान्यता कला का वर्गीकरण दो प्रमुख रूप में किया जा सकता है :

1. उपयोगी कला

2. ललित कला

उपयोगी कलाओं के अंतर्गत वे सभी कलाएँ आती हैं जिनसे हमारी दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, जैसे भोजन निर्माण, वस्त्र निर्माण, काष्ठ निर्माण आदि।

ललित कलाएँ कलाओं का सबसे उत्तम रूप है अंग्रेजी भाषा के 'फाइन आर्ट' का यह हिंदी अनुवाद है। जिन कलाओं से हमें सौन्दर्य की अनुभूति और आनंद की प्राप्ति होती है

उन्हें ललित कलाएँ कहते है। जैसे स्थापत्य कला, मूर्तिकला, चित्रकला, काव्यकला, और संगीतकला।

ये सभी ललित कलाएँ ऐतिहासिक दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न रूप में है परन्तु साहित्यिक अथवा काव्यात्मक दृष्टि से इनका एक विशेष सम्बन्ध है जिस पर रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्द पूर्णत: प्रकाश डालते हैं, "चित्र भाव को आकार प्रदान करता है। चित्र देह है और संगीत प्राण है।" [1] इसी प्रकार काव्य और चित्र के सम्बन्धों पर होरेस के चित्र सम्बन्धी यह विचार, "चित्र बिना शब्दों की कविता है।"[2] चित्र में परोक्ष रूप से काव्य की उपस्थिति की ओर संकेत करते हैं। सिमोनिडीज के अनुसार, "चित्र मूक कविता है और कविता मुखर चित्र है।"[3] ये सभी कथ्य चित्र में काव्य की उपस्थिति के साथ ही काव्य में चित्र की सम्भावनाओं को भी स्पष्ट रूप में स्वीकार करते हैं।

काव्य में उपस्थित चित्रों की इन्हीं सम्भावनाओं पर विचारात्मक दृष्टि होने के फलस्वरूप साहित्यिक तथा शोध विषय के परिप्रेक्ष्य में चित्रकला को हम आगे प्रत्येक स्थान पर चित्रांकन के रूप में उल्लिखित करेंगे।

2.1 : चित्रांकन : अर्थ एवं परिभाषा

चित्र का अर्थ:- 'तस्वीर, चित्रकारी अथवा आलेखन'

बृहत् हिन्दी कोश के अनुसार, "कागज कपड़े आदि पर बनाई हुई किसी चीज की प्रतिमूर्ति"[4]

चित्र की परिभाषा -" चित्रकार जब अपने रंग और तूलिका से अपनी कल्पना को किसी भित्ति, कागज अथवा काण्टन पर उतारता है तो वह चित्र है।"[5]

चित्रांकन का सामान्य अर्थ है :- चित्र अंकित करना।

चित्रांकन की परिभाषा :

चित्रांकन को चित्रकला के सन्दर्भ में अनेक विद्धानों ने परिभाषित करने का प्रयास किया है -

डॉ. रीता प्रताप के अनुसार, "किसी समतल धरातल, जैसे- भित्ति, काष्ठफलक आदि पर रंग तथा रेखाओं की सहायता से लम्बाई, चौड़ाई, गोलाई तथा ऊँचाई को अंकित कर किसी रूप का आभास करना 'चित्रकला' है।"[6]

रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, "चित्रकला मनुष्य की उस रचना को कहते हैं जिसमें मनुष्य अपनी कला को अथवा किसी प्राकृतिक वस्तु या किसी भी वस्तु को रंग के माध्यम से किसी भित्ति पर उरेहता है या अंकित करता है।"[7] परन्तु, यह भी सत्य है कि "लेखन का सम्बन्ध सिर्फ शब्दों से ही नहीं, रेखाओं और रंगो द्वारा चित्र-निर्धारण से भी है"[8] ठीक उसी प्रकार, जैसे चित्रकला का सम्बन्ध सिर्फ रेखाओं और रंगो द्वारा चित्र के अंकन में ही नहीं, शब्दों के कलात्मक प्रयोग द्वारा चित्रों के अंकन से भी है।

चित्र और कविता दोनों की कसौटी को समान मानते हुए प्रेमचंद इनके सम्बन्ध को व्यक्त करते हैं, कि "कविता की तरह चित्रकला भी मनुष्य की कोमल भावनाओं का परिणाम है। जो काम कवि करता है, वही चित्रकार करता है; कवि भाषा से, चित्रकार पेंसिल या कलम से। सच्ची कविता की परिभाषा वह है कि तस्वीर खींच दे। उसी तरह सच्ची तस्वीर का यह गुण है कि उसमें कविता का आनन्द आये ।"[9]

पद्मश्री कपिला वात्स्यायन भी साहित्य में चित्रों के अंकन अर्थात् चित्रांकन पर विचार करते हुए कहती हैं कि "साहित्यकार शब्दों में चित्र बनाता है, शब्दों में संगीत का गुंजन करता है।"[10] इस प्रकार अपने शब्दों में कहें तो चित्रांकन की स्पष्ट परिभाषा, मनुष्य द्वारा अपनी कल्पना अथवा किसी भी वस्तु को शब्दों अथवा रंगो के माध्यम से उकेरना ही है।

2.2 : चित्रांकन का स्वरूप :

चित्र सृजन की चाह मानव में सर्वप्रथम कब और कैसे उपजी होगी, उसका प्रचलन कब और कैसे धीरे-धीरे संस्कृति का अंग बन गया यह तो निश्चित रूप से कहना कठिन है परन्तु आदिकाल से वर्तमान समय तक मानव शब्दों, रेखाओं, रंगो तथा आकार आदि के द्वारा अपनी भावनाओं को व्यक्त करता चला आ रहा है। जब आदिमानव ने गिरी कन्दराओं को अपना आश्रय स्थल बनाया और तब जो उदगार उन्होंने दीवारों पर चित्र रूप में उकेरे वहीं से चित्रांकन के स्वरूप की निर्मिति आरम्भ मानी जा सकती है जिसमें समयानुसार देश, काल, वातावरण तथा संस्कृति में होने वाले लगातार परिवर्तन से पड़ने वाले प्रभाव के कारण निरंतर बदलाव आता रहा है। इसी से चित्रों के सम्बन्ध में मानवानुराग का पता चलता है, जो कि आज तक भी बना हुआ है। इसके प्रमाण रूप में चित्र भारत तथा अन्य देशों में मिलते हैं।

2.2.1 : आदिकालीन चित्रांकन :

आदिकालीन चित्रांकन में शैलचित्र अथवा गुहाचित्र मानव सभ्यता के आरम्भिक उदाहरण कहे जा सकते हैं। इन चित्रों में आदिमानव ने अपनी कोमलतम भावनाओं व संघर्षमय जीवन को रेखाओं की सहायता से गुफाओं की दीवारों पर उकेरा है। इन चित्रों के

अध्येताओं ने इनके निर्माण के पीछे विशेष उद्देश्यों की परिकल्पना की है। उनकी मान्यता है कि आदिम मानव ने सर्वप्रथम अपनी भूख की पूर्ति के लिए पशुओं का शिकार आरम्भ किया और अपने काल की स्मृतियों को जीवित बनाने तथा जादू टोने के उद्देश्य से इन चित्रों का निर्माण किया होगा।

डॉ. रीता प्रताप के अनुसार, "गुहावासी मानव आखेट करने से पूर्व आदिम पशु का चित्र बनाकर कुछ जादू टोना, टोटका आदि करके अपने आखेट की सफलता पर विश्वास करता था। उसका विश्वास था कि जिस पशु को वह चित्र रूप में अंकित करता है, वह वश में सहजता एवं सरलता से आ जाता है।"[11]

भारत में शैल पर चित्रों की रचना का उद्गम उत्तर पाषाण काल के लगभग 10000 से 5000 वर्ष ईसा पूर्व माना गया है। इस समय कई चित्र निर्मित किये गए। इस युग का मनुष्य शिकार करते व आमोद-प्रमोद करते हुए चित्रित किया गया है। भारत में मुख्य रूप से आदमगढ़, रायगढ़, पंचमढ़ी, होशंगाबाद, मिर्जापुर, सिहंनपुर और राजस्थान में कोटा, बूंदी क्षेत्र के अलनिया, दर्रा, मेवाड़ क्षेत्र के चित्तौड़गढ़ एवं उदयपुर के बाठेड़ाकला में भी इस समय के ये शैल चित्र अनुपम उदाहरण रूप में मिलते हैं।

ये आरम्भिक चित्र खड़िया या गेरू जैसे लालरंग में पशु की चर्बी को मिलाकर बनाये जाते थे। सामान्यत: यह चित्र दो-तीन सरल रेखाओं से निर्मित किये जाते थे जिनमें गति एवं सजीवता मिलती है, "सिहंनपुर का एक चर्चित चित्र है, जिसमें कुछ आखेटक हाथ में पाषाण निर्मित हथियार लेकर चारों ओर से पशु को घेरे हुए हैं, प्रबल पशु की छींक से कुछ आखेटक हवा में उछल गए हैं और कुछ पृथ्वी पर गिरे हुए हैं।"[12] कलाकारों द्वारा चित्रों में मानवीय एवं पशु आकारों की शारीरिक संरचना का उचित अंकन किया गया है।

आदिम चित्रांकन के इस प्रागैतिहासिक युग के पश्चात भारतीय कला इतिहास और सिन्धु घाटी सभ्यता के सन्दर्भ मिलते हैं। यह समय पुरातन प्रस्तर युग के बर्बर जीवन व नव प्रस्तर युग के समय जीवन के संधिकाल वाला समय भी माना जाता है। इस समय सिन्धु घाटी के विशाल क्षेत्र में काली एवं लाल पकाई हुई मिट्टी के बर्तन बनाने की कला का विकास हुआ था जिन पर मानवाकृतियाँ, वनस्पति, पशु-पक्षी तथा ज्यामितीय अभिप्रायों से गोल अर्धचन्द्राकार व तिरछी आलेखों का प्रयोग है। डॉ. लोकेश चन्द्र शर्मा के अनुसार, "यह सभ्यता 4000 से 3000 ईसा पूर्व के आस-पास विकसित हुई। सर मार्टिमार व्हीलर ने हड़प्पा का समय 2500 से 1500 ईसा पूर्व माना है।"[13] तथा "इस प्रकार की सामग्री 'भारत' तथा 'पाकिस्तान' में 'मोहनजोदड़ो, 'हड़प्पा', 'कुल्ली', 'मेंही', 'लोथल', 'झूंकर तथा झांगर', 'चन्दुदड़ो', 'अमरी नुन्दरानाल', 'झोब' नामक पर उत्खनन के पश्चात प्राप्त हुई है।"[14]

ऋग्वेद तथा अथर्वेद में आगे जाकर कुछ रूपाकारों का उल्लेख हुआ है, "ऋग्वेद में चमड़े पर बने अग्नि देवता के चित्र का उल्लेख आया है। इस चित्र को यज्ञ के समक्ष लटकाया जाता था और यज्ञ की समाप्ति पर लपेट दिया जाता था। इसी ऋग्वेद में भृगु ऋषियों के वंशजों को लकड़ी के काम में दक्ष बताया गया है। ऋग्वेद में यज्ञ शालाओं के चारों और की चौखटों पर बनी स्त्री देवियों की आकृतियों का भी उल्लेख आया है।"[15]

महाकाव्य युग (800-600 ईसा पूर्व) में महाभारत महाकाव्य में उषा-अनिरुद्ध की प्रेम कथा में चित्रांकन का उल्लेख मिलता है, "'विष्णुधर्मोतर पुराण' के 'चित्रसूत्र' में चित्रकला को कलाओं में सर्वोच्च स्थान दिया गया है।.... इस ग्रंथ में कहा गया है कि जिस कृति में आत्मीयता, वेदना (छंद) और अनिवर्चनीय रसमयता है, वही चित्र कहा जा सकता है।"[16] हरिवंश पुराण के प्रसंगानुसार वाणासुर की पुत्री राजकुमारी उषा ने स्वप्न में एक सुंदर युवराज

को अपने साथ वाटिका में विहार करते हुए देखा और वह उससे प्रेम करने लगी। जब उसकी परिचारिका चित्रलेखा को इस स्वप्न का ज्ञान हुआ तो उसकी विरहवेदना को समझते हुए कई महापुरुषों, देवताओं और युवराजों के छवि चित्र बनाकर उषा के सामने प्रस्तुत किये। उषा स्वप्न में देखे उस राजकुमार के चित्र को पहचान लेती है। इस प्रकार की और भी कथाएँ हैं जिनमें स्मृति के आधार पर व्यक्ति-चित्र बनाने की चर्चा मिलती है। जैसे, "महाभारत में सत्यवान के द्वारा बाल-काल में एक घोड़े की भित्ति पर चित्र अंकित करने का प्रसंग आता है।"[17] इसके अलावा मत्स्य, गरुण, अग्नि, पद्म तथा स्कन्द आदि पुराणों में भी चित्रांकन का प्रचुर मात्रा में उल्लेख मिलता है। रामायण में दीवारों, कक्षों, रथों तथा राजभवनों पर चित्र का उल्लेख है। रामायण के सुंदरकाण्ड व लंकाकाण्ड में भी लिखा है कि रावण की लंका में हनुमान जी को चित्रशाला और चित्रों से सुसज्जित राजगृह देखने को मिले थे।

इसके अलावा पाणिनी की 'अष्टाध्यायी', भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' कालिदास के 'रघुवंश' तथा 'मेघदूत' में भी चित्रण सम्बन्धी पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। डॉ. रीता गुप्ता ने भरतमुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' के सम्बन्ध में लिखा है कि "सर्वप्रथम 'कला' शब्द का प्रयोग इसी ग्रंथ में किया गया है। वर्ण मिश्रण सम्बन्धी तकनीकों एवं विधियों पर भी प्रकाश डाला गया है। रंगो द्वारा भावाभिव्यक्ति तथा रंगो के मन पर पड़ने वाले प्रभाव की भी इस ग्रंथ में चर्चा की गयी है।"[18] इस प्रकार अनेक कथाओं व ग्रंथो के माध्यम से आदिकालीन समाज में चित्रांकन की स्थिति व महत्त्व का बोध होता है।

50 ईसा पूर्व से 700 ई. तक के इस समय के प्रारम्भ में चित्रांकन को लेकर बौद्ध कलाकारों का दूसरा ही दृष्टिकोण रहा। यह दृष्टिकोण कला के प्रति अच्छा नहीं था। बौद्ध कला को विलासिता का द्योतक समझते रहे। यही कारण था कि प्राचीन बौद्ध विहारों में

पुष्पालंकार को छोड़ कर दूसरे विषयों पर चित्रकारी नहीं दिखाई देती। परन्तु इस दृष्टिकोण के बरक्स भी प्राचीन बौद्ध ग्रंथो, जातक कथाओं आदि में चित्रकला के विषय में जिन रुचिकर बातों का पता लगता है उन्हें अजन्ता, बाघ और नालंदा आदि गुफाओं की कलाकृतियों में देखा जा सकता है। भारत में इसकी महान विरासत भित्ति चित्रों के रूप में सुरक्षित है। इन बौद्ध चित्रों का विस्तार और लोकप्रियता भारत के उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत तथा मध्य एशिया के अनेक देशो में बनी। बौद्ध कला की इस महान थाती का समृद्ध केंद्र अर्थात् सर्वोत्तम चित्राकृतियाँ 'अजन्ता' में देखने को मिलती हैं। इन चित्रावलियों में इस काल की आरम्भिक और अन्तिम दोनों चरणों की कला दिखाई पड़ती है। इन चित्रों का मुख्य विषय महात्मा बुद्ध का वास्तविक जीवन तथा उनके पूर्व जन्म की कथाओं का विवेचन और चित्रण है। औरंगाबाद से 102 किमी. की दूरी पर स्थित सतपुड़ा की ज्वालामुखी से निर्मित पहाड़ियों को काटती बघोरा नामक नदी के अर्धचंद्राकार रूप में ये तीस गुफाएं चित्र एवं मूर्तिकला से अलंकृत हैं, "अजन्ता की प्रत्येक गुफा में मूर्तियाँ, स्तम्भ तथा द्वार काटे गये हैं और भित्तियों पर चित्रकारी की गयी है। इस प्रकार अजन्ता की ये गुफाएँ 'वास्तुकला', 'मूर्तिकला' तथा 'चित्रकला' का उत्तम संगम हैं।"[19] इन गुफाओं में सातवाहन, वाकाटक, चालुक्य और गुप्त शासकों के समय में चित्र निर्माण हुआ, "अजन्ता में बुद्ध की जातक कथाओं का अंकन करने वाली गुफाओं में से वर्तमान में गुफा संख्या 1,2,9,10,16,17 में ही चित्र सुरक्षित रह गए हैं। इन चित्रों में बोधिसत्व पद्मपाणी बोधिसत्व वज्रपाणी, महाहंस जातक, कपिजातक, सर्वनाश, मर विजय छ: दंतजातक आदि कथाएं प्रसिद्ध हैं। गुफा संख्या 1 की बायीं भित्ति पर पद्मपाणि के विशाल चित्रों में बोधिसत्व को विश्व पर असीम करुणा व्यक्त करते हुए चित्रित किया गया है।"[20] उनकी भावमग्न आँखे इस तरह से नीचे की ओर झुकी हुई हैं कि मानो

संसार के कष्टों को दूर करने पर विचारमग्न हो। इस सम्पूर्ण चित्रों में माधुर्य एवं कोमलता के भावों के साथ ही मानवीय एवं पशु आकृतियाँ भी उत्तम चित्रित हुई हैं।

अजन्ता के ये चित्र दीवारों पर विशिष्ट तकनीक से बनाये गए हैं। सर्वप्रथम गुफाओं का निर्माण कर, उनकी दीवारों पर खड़िया, गोबर, बारीक बजरी आदि से लेप कर गुफा की खुरदुरी दीवार पर प्लास्टर की तरह लगाया जाता था। फिर उसके ऊपर चूने का लेप लगाकर गीले प्लास्टर वाली दीवारों पर ही खनिज, रंगो द्वारा चित्र उकेरे जाते थे, "इनमें अंग विन्यास, मुख-मुद्रा, भावभंगिमा और अंग-प्रत्यंगों की सुन्दरता, नाना प्रकार के केशपाश, वस्त्राभरण आदि तत्वों को बड़ी सुन्दरता से चित्रित किया गया है और वे दर्शक की सौन्दर्यानुभूति पर स्थाई प्रभाव अंकित करते हैं। पशु-पक्षी, वृक्ष, तड़ाग और कमल आदि के चित्र भी बड़ी निपुणता से बनाए गए हैं। इनमें सुंदर रंगो का प्रयोग किया गया है। चिन्तन इतना प्रशस्त और नियमित है कि प्रकृति और सौन्दर्य की आत्मा से साक्षात्कार कर लेने वाले कलाकार के अतिरिक्त कोई दूसरा उन्हें अंकित नहीं कर सकता।.... अजन्ता के कुछ चित्र इतने भावपूर्ण हैं कि उनमें चित्रित स्त्री पुरुषों की मानसिक दशा का प्रत्यक्ष दिग्दर्शन होता है। वे कैमरे से खिंची हुई फोटो के समान सही अनुकृति है, किन्तु निर्जीव नहीं है, उनमे रक्त प्रवाहित होता है और वे जीवित सी लगती है। उनकी मुद्राओं में गति है और चेहरों पर भाव अंकित है।"[21]

श्रीलंका में स्थित 'सिगरिया' की गुफाओं में अजन्ता की इस शैली का परिपक्व रूप हमें देखने को मिलता है। वहीं भारत के बाघ, बादामी, सित्तन्नवासल गुफाओं के चित्रों में अजन्ता के ही चित्रों की छाप है।

2.2.2 : पूर्व मध्यकालीन चित्रांकन (700 से 1500 ई. तक) :

अजन्ता की चित्र परम्परा का आठवीं शताब्दी में राजनीतिक कारणों से अधोपतन होने लगा। विदेशी आक्रान्ताओं ने देश पर आक्रमण कर सुखद वातावरण में अशांति और अव्यवस्था उत्पन्न कर दी थी। मध्यकाल में अजन्ता की यह भित्ति चित्र परम्परा प्राय: नष्ट होने लगी। सम्भवत: मध्यकालीन परम्परा में विकसित लघु चित्रांकन की परम्परा का कारण भी यही विदेशी आक्रान्ताओं का भय ही था। इसी समय भारत के उत्तर से पश्चिम भाग में जैन धर्म के प्रबल होने से जैन पोथी चित्रण का प्रचलन शुरू हुआ। मध्य युग के आरम्भिक लघु चित्र पाल शैली में हैं। लघु चित्रों की यह परम्परा एक ओर बंगाल-बिहार के क्षेत्र में पाल शैली तो दूसरी और पश्चिम भारत में जैन शैली के रूप में विकसित हुई।

ये लघु-चित्र ताड़पत्रों पर चित्रित किये जाते थे। अब तक हुए शोध अध्ययनों में ऐसे कई तथ्य उत्तर-भारत के गुजरात, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्य प्रदेश आदि क्षेत्रो में मिले हैं जिनमें जैन धर्म आधारित प्रज्ञापरमिता, साधनमाला, करणदेवगुहा नामक ताड़पत्रीय ग्रंथ सचित्र 'पाल शैली' में चित्रित किये गए हैं। जैन शैली के चित्र वाले ग्रंथ सुपासनाचरियम, श्रावकप्रतिकर्माणसूत्रघूर्णी, बालगोपालस्तुति, गीतगोविन्द नामक ग्रंथ ताड़पत्रों पर बने हुए हैं।

'पाल शैली' के चित्र महात्मा बुद्ध और बौद्ध धर्म के देवी देवताओं के हैं। इन पर अजन्ता का प्रभाव होते हुए भी इनमें वह लयात्मकता न होकर एक जैसी मोटाई लिए रेखाएँ खींची गई हैं। डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के शब्दों में, "इनमें स्वतंत्र छंद और गतिमानता की कमी है, अंकन की परम्परा में जकड़े होने के कारण लगता है ये चित्र हिल नहीं पाते। नाक इनमें विशेष लम्बी होती है और परली आँख का कुछ अंश दिखता रहता है। चेहरा एकतरफा होता है।"[22] श्वेताम्बर जैन पोथियों पर इस शैली के चित्र अधिक मिलते हैं, "जिनमें चेहरों से

बाहर निकली हुई परली आँख क्षीणकटि व स्पष्ट रेखांकन इस शैली की मुख्य विशेषताएँ हैं।"[23] परन्तु, चित्रांकन के इस रूप में भी, "10 वीं से 15 वी शताब्दी तक (500 वर्षों) की चित्रकला की उन्नत परम्परा को जीवित रखने का श्रेय 'पाल', 'जैन', 'गुजरात' एवं 'अपभ्रंश' शैलियों को जाता है।"[24]

गुजरात शैली के सचित्र ग्रंथ बालगोपाल स्तुति, दुर्गासप्तशती तथा रहस्यरति आदि हैं, जिन्होंने अजन्ता एलोरा व बाघ के चित्रों को लघु चित्र रूप में सुरक्षित रखा है। राजपूत, मुगल शैली तथा प्राचीन भित्ति चित्रों के बीच चित्रकला में होने वाले परिवर्तनों का इतिहास भी इन चित्रों के माध्यम से जाना जा सकता है

2.2.3 : उत्तर मध्यकालीन चित्रांकन (1550 से 1900 ई. तक) :

16वीं शती के उत्तरार्ध में, भारत में चित्रांकन के दो रूप इस समय प्रचलित थे - मुगल कला और राजस्थानी कला। इनमें मुगल कला मुगल सम्राटों के आश्रय में ईरानी चित्रकला के आधार पर विकसित हुई थी, जिसका मूलाधार अजन्ता की चित्रकला थी, "18वीं शती में, प्रकृति के सुरम्य प्रदेशों में, मुगल चित्रकला और राजस्थानी चित्रकला के संयोग से 'पहाड़ी चित्रकला' का उद्गम हुआ जो 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक छाई रही।"[25]

- **मुगल चित्रों का स्वरूप** :

लघु चित्र परम्परा में मुगल चित्र मुगलों के समय में ईरानी व भारतीय कला तत्वों के सम्मिश्रण का परिष्कृत रूप है, "भारतीय कला की बहती धारा में जब-जब नए स्रोत आकर मिले हैं, तब-तब उसमें विशेष गति और सुन्दरता आई है। इरानी कला का भारतीयकरण वही

नयी धारा थी, जिसने भारत को एक नयी शैली दी।"[26] यह नयी शैली मुगल चित्रांकन की थी जिसकी नींव भारत में बाबर द्वारा डाली गयी तथा इसका हुमायूँ काल से प्रारम्भ हुआ। ईरानी चित्रकार मीर सैय्यद अली जुदाई और ख्वाजा अब्दुस्म्द 'शिराजी' को हुमायूँ ने अपना दरबारी चित्रकार नियुक्त कर इन्हीं के सानिध्य में अकबर को कला की आरम्भिक शिक्षा ग्रहण करवाई। अकबर पहले ऐसे शासक रहे जिन्होंने अपने राज्यकाल में चित्रशाला की स्थापना कर न केवल सांस्कृतिक उत्थान में विशिष्ट योगदान दिया बल्कि उनकी चित्रशाला में पूरे देश से कार्य करने आने वाले चित्रकारों का अकबर स्वयं अवलोकन भी करते थे तथा समय-समय पर कलाकारों को सम्मानित भी करते थे। डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के मतानुसार, "अकबरकालीन चित्रों में पोथी-विषयक चित्र बहुत हैं। फ़ारसी हिंदी संस्कृत की अनेक पुस्तकों को चित्रों द्वारा स्पष्ट और अलंकृत किया गया। उस काल में अनेक संस्कृत ग्रंथो का फ़ारसी अनुवाद भी हुआ जिसमें अनुपम कलाकारों के चित्र भर गए।" [27] अकबर के समय चित्रांकन परम्परा का जो भारतीय स्वरूप विकसित हुआ उसने जहाँगीर के समय अपने उत्कर्ष को प्राप्त किया। जहाँगीर चित्रप्रेमी तथा चित्रकार के साथ प्रकृति-प्रेमी, पशु-प्रेमी, उद्यान-प्रेमी व लेखक भी था, इसलिए उसने अपने चित्रों में पशु- पक्षी और प्रकृति की सुंदर वस्तुओं को विषय रूप में चित्रित करवाया। यह युग इस दृष्टि से चित्रांकन का सुन्दरतम काल है जिसके लिए भगवतशरण उपाध्याय का कथन है कि "जहाँगीरकालीन कला चित्रकला का स्वर्ण युग है... जहाँगीर के समय की चित्रकला के सम्बन्ध में तीन चार बातें विशेष रूप से उल्लेखनीय है- ईरानी रूप, घटनापरक रूपायन, प्राकृतिक सौन्दर्य और स्वभाविकता।... प्राकृतिक सौन्दर्य का अंकन जितना और जितनी दक्षता से जहाँगीर के चित्रकारों ने किया, उतना कभी नहीं हुआ।... पेड़-पौधों का इतना सुंदर रूपांकन अन्यत्र नहीं मिलता। पत्ता-पत्ता

जैसे जी उठता है, हिल उठता है। पहाड़, नदी, बादल चुप्पी में भी जैसे अपनी बातें कह उठते हैं।"[28]

जहाँगीर के बाद शाहजहाँ की स्थापत्यकला में अधिक रुचि होने के कारण चित्रांकन पर उसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा। उसमें शिथिलता आने लगी। भगवतशरण उपाध्याय का मानना है कि "शाहजहाँ काल की चित्रकला की दो विशेषताएँ चित्र में अधिकाधिक नारी रूपों का निरूपण और इसाई धर्म का चित्रण है।"[29] कला के मुगल काल में पूर्णतः दरबारी हो जाने के कारण औरंगजेब के समय में कला व साहित्य की यह धारा अवरुद्ध हो गयी साथ ही औरंगजेब की अनेक तस्वीरों का मिलना इस बात की ओर संकेत है कि कला तब भी बराबर गुप्त रूप से ही सही पर बनी हुई थीं। मुगल चित्रों का यह गौरव मुहम्मदशाह के जमाने तक तो बना रहा पर नादिरशाह और अहमद अब्दाली के आक्रमण के बाद यह बिखर गया। चित्रकारों के परिवार दिल्ली आगरा छोड़ अन्य प्रान्तों के नए दरबारों में आश्रय लेने लगे जिससे इन मुगलिया चित्रकारों के वहाँ जाने से मुगल चित्रांकन कला का प्रभाव वहां की चित्रकला पर भी पड़ा।

- **राजस्थानी चित्रों का स्वरूप** :

चित्रांकन की इस पद्धति पर जैन व गुजरात चित्रशैली का प्रभाव माना जाता है। डॉ. लोकेश चन्द शर्मा के अनुसार, "जो प्रकृति चित्रण राजपूत कला में देखने को मिलता है वह सब गुजरात के आस-पास में काफी मात्रा में था। 'रागमाला' के के चित्र भी गुजरात के पास में ही प्रारम्भ हुए (लाट देश में)।" [30] आरम्भिक राजस्थानी चित्रों का स्वरुप चौरपंचाशिका (1540 ई.) के ग्रंथ चित्रों में दिखाई देता है। यह चित्र कागज व वसली पर बने होते थे। धार्मिक विषय सामाजिक जनजीवन, युद्ध एवं शिकार तथा रागमाला एवं श्रृंगार से सम्बन्धित चित्र इन

चित्रों की विषयवस्तु होते थे जिनमें श्रीकृष्ण की बाल लीलाएँ, महाभारत, रामायण, भागवतपुराण आदि के चित्र तीज त्यौहारों जैसे होली-दीपावली के चित्र, ऋतु बारहामासा से सम्बन्धित चित्र, राग रागनियों के चित्र तथा नायिका-भेद आदि के चित्र मुख्यत: उकेरे जाते थे, "16वीं शताब्दी में इस परिवर्तन ने चित्रकला का रूप ही बदल दिया। वैष्णव चित्र में अब जीवन का उल्लास और स्फूर्ति मिलती थी। उनमें अब रंगो का बोध ही नहीं, सौन्दर्यानुभूति भी होती थी। सूर-तुलसी के वात्सल्य वर्ण में जो लालित्य है वही बालकृष्ण की लीलाओं में रंगो द्वारा अंकित किया गया है।"[31]

इन चित्रों में चटक रंगो लाल, पीला, नीला, हरा, काला, सफेद आदि का विशुद्ध रूप से प्रयोग किया जाता था। चित्रों के बाह्य भाग के चारों तरफ लाल तथा सिंदूरी रंग से बॉर्डर बनाया जाता था। प्राकृतिक सौन्दर्य का अलौकिक चित्रण भी इन चित्रों की विशेषता थी। अधिकांश चित्र हस्तनिर्मित कागज पर बनाए जाते थे तथा उस पर अंकित रेखाओं में गति, गोलार्ध एवं कोमलता परिलक्षित होती थी। अधिकतर चित्र छोटे आकार में बनाये जाने के कारण इन्हें लघुचित्र भी कहते हैं।

- **पहाड़ी चित्रों का स्वरूप :**

अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में हिमालय की घाटियों काँगड़ा, बसौली, गुलेर, नूरपुर, चम्बा, कुल्लू, कश्मीर क्षेत्र में चित्रांकन की यह उन्नतशील भारतीय लघुचित्र परम्परा पुष्पित व पल्लवित हुई। 18वीं से 19वीं शताब्दी के मध्य स्थानीय कलाकार और मुगल दरबार से निराश्रित कलाकार आश्रय की खोज में पहाड़ी क्षेत्र की ओर गये। उनके भीतर के दरबारीपन की जकड़ और अभिजात्य को वहाँ की परिस्थितियों ने तोड़कर काँगड़ा, बसौली, गुलेर, मंदी आदि के शासको से संरक्षण दिलाया। इस संरक्षण में ही इन कलाकारों ने कृष्ण

भक्ति श्रृंखला का निर्माण किया। इनके द्वारा निर्मित चित्रों में पहाड़ों का आत्मीय सौन्दर्य और प्रकृति का सुकुमार रूप बसा है जिसकी प्रशंसा करते हुए भगवतशरण उपाध्याय जी लिखते हैं, "एक नया अभिराम, निर्द्वंद जीवन इन नए चित्रों में चमक उठा। अतीत और वर्तमान के प्रति आदर से पहाड़ी चित्रकार का मस्तक झुका। एक से एक हजारों चित्र उसकी जादू की छड़ी से निकलने लगें। सुकुमार कलेवर, मनोहर वपुकान्ति, स्पष्ट भावधारा, गतिमान घटना पहाड़ी चित्रों में अभिव्यक्त हुई।"[32]

इन पहाड़ी चित्रों में रामायण, महाभारत, हरिवंश पुराण, गीतगोविन्द की अनंत स्थितियाँ भाव सहित अंकित हुई हैं। रागमाला, भागवत आदि में जहां एक और कृष्ण की अनेक ध्वनियाँ मध्यकालीन भावना और रूचि का विशेष ध्यान रखते हुए चित्रित हुई हैं वहीं ब्रज की प्रधान भाव-भंगिमाएँ और विश्वास, कृष्ण-केलि, गोप-गोपी रास क्रीड़ा, आदि भी चित्रों के माध्यम से अद्भुत रूप में उकेरे गए हैं। उसके साथ ही पहाड़ी क्षेत्र के नैसर्गिक सौन्दर्य को भी कोमल रंग और रेखाओं के द्वारा चित्रकारों ने जीवित कर दिया है। आज ऐसे हजारों चित्र हैं जो पहाड़ी चित्रांकन के अग्रदूत बनकर भारतीय चित्रांकन परम्परा में स्वयं को आगे बनाये रखने की दौड़ में हैं।

2.2.4 : आधुनिक काल में चित्रांकन :

औरंगजेब के निधन से मुगल साम्राज्य निर्बल हो गया था जिसके कारण कलाकार मुगल दरबार को छोड़कर आश्रय की खोज में पहाड़ी, राजस्थान और पटना, बंगाल आदि क्षेत्रों की ओर जाने लगे। इस उथल-पुथल के अनिश्चित वातावरण से दिल्ली के कुछ कलाकार भी आश्रय की खोज में मुर्शिदाबाद, पटना तथा कोलकाता की तरफ आ बसे। यहाँ

इन चित्रकारों ने एक विशिष्ट ही शैली को जन्म दिया जो 'पटना शैली' अथवा 'कम्पनी शैली' के नाम से जानी जाती हैं।

17 वीं शताब्दी में ईस्ट इंडिया कम्पनी व्यापार और उद्योग के उद्देश्य से भारत आई और उसने यहाँ बिहार, चेन्नई, कोलकता जैसे शहरों में अपना वर्चस्व कायम कर लिया। धीरे-धीरे इसने पूरे भारत पर ही अपना ऐसा कब्जा जमाया कि व्यापार के साथ-साथ भारतीय समाज व राजकाज के कार्यों में हस्तक्षेप कर सम्पूर्ण देश की राजनीतिक व आर्थिक व्यवस्थाओं पर एकाधिकार कर लिया। आरम्भ में ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रमुख केंद्र पटना व बंगाल था। यहाँ कम्पनी के वे उच्च अधिकारी रहते थे जिन्हें भारतीय कला से प्रेम था। इनके द्वारा 'पटना शैली' के ये चित्र पर्याप्त मात्रा में खरीदे जाते थे।

पटना शैली को कम्पनी का यथेष्ट संरक्षण मिलने के कारण ही इसे 'कम्पनी शैली' नाम दे दिया गया। राजनीतिक दृष्टि से, "यह वह समय था जब मुगल सम्राट औरंगजेब के कट्टरपूर्ण रवैये से तंग आकर कलाकार संरक्षण की खोज में बंगाल व पटना की और आ गये। पटना में आकर इन्हीं दरबारी चित्रकारों ने मुगल व स्थानीय लोकशैली से प्रेरणा ग्रहण कर इस नयी शैली को जन्म दिया।"[33]

पटना शैली के चित्रों में नवीनता के साथ मुगल शैली का रेखांकन और भारतीय चित्रों वाली सपाट रंगयोजना का भी प्रयोग होने लगा। इस शैली के प्रमुख विषय सामाजिक व दैनिक जीवन के क्रियाकलाप, पशु-पक्षी व व्यक्ति चित्र रहे हैं। पटना शैली के प्रमुख चित्रकार ताराचन्द्र और गोपाल चन्द्र हैं।

आधुनिक भारतीय कला का उद्भव बंगाल स्कूल के कला आन्दोलन से है। इस आन्दोलन के प्रणेता प्रो. ई. पी. हेवेल, डॉ. आनंद कुमार स्वामी, ए.के. गागुली.,

अवनीन्द्रनाथ ठाकुर थे। अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का इसमें विशेष योगदान रहा। ये चित्रकार के साथ चिन्तन व शिक्षक भी थे जिनके नेतृत्व में बंगाल के युवा कलाकारों एस. एन. गांगुली., दलाल बोस, हकीम खान, शैलेन्द्रनाथ डे, अमित हाल्दर आदि चित्रकारों ने एक दल बनाया। इस दल के कलाकारों ने न सिर्फ भारतीय चित्रांकन की परम्परा का प्रशिक्षण प्राप्त किया बल्कि कम्पनी तथा विदेशी कलाकृतियों का भी अध्ययन किया। यह दल कला के नवजागरण आन्दोलन के रूप में उभरा जिसमें भारतीयता पर अधिक जोर दिया गया। देश में मुंबई, चेन्नई, कोलकाता,लखनऊ, जयपुर आदि स्थानों पर कला संस्थान खोलने पर शिक्षकों की आवश्यकता पूर्ति हेतु बंगाल स्कूल के कलाकारों ने वहाँ जाकर शिक्षण किया तथा कलाकार के रूप में सदाचारिता का प्रसार किया। इस भारतीय भावना के अनुरूप गुजरात के रविशंकर रावल ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया तथा राजस्थान में रामगोपाल विजयवर्गीय, पी.अन.चोयल, देवकीनंदन शर्मा तथा कृपाल सिंह शेखावत ने बंगाल शैली की रचनाएँ की, "बंगाल में कलाकारों ने इस शैली की वॉश पद्धति को सीखकर उसे परम्परागत भारतीय चित्रकला एवं विषयवस्तु के साथ जोड़ दिया। इनकी आकृतियों में भारतीय भित्तिचित्र परम्परा के सपाट रंग व राजस्थानी, मुगल रेखाओं व तकनीक में छाया प्रकाश का प्रभाव भी दिखाई देता है।"[34] ब्रिटिश सरकार द्वारा विदेशी तर्ज पर शिक्षा देने के उद्देश्य से लाहौर, कोलकाता, मुंबई, चेन्नई तथा भारत के विभिन्न राज्यों में कला शिक्षण हेतु विद्यालय खोले गए। इन कला संस्थानों में शिक्षा प्राप्त कलाकारों के यूरोपीय कला पद्धति से कार्य भेजने के परिणामस्वरुप बंगाल शैली दम तोड़ने लगी। अब कला में यूरोपीय पद्धति से कार्य करने वाले कलाकार देश में बहुत अधिक हो चुके हैं, जिनमें राजा रवि वर्मा सर्वोपरि कलाकार कहे जा सकते हैं। इनकी चित्र-रचना तैलचित्र पद्धति में है तथा प्रकृति चित्र, व्यक्ति चित्र, धार्मिक-पौराणिक भारतीय कथानकों पर आधारित है, जिनमें रावण द्वारा सीता के हरण का चित्रांकन

महाकाव्य के वर्णन में अपने कल्पना के प्रयोग से कुछ इस तरह से हुआ है जिसे सहज स्वीकारा तथा उनकी कला को खूब सराहा गया है।

इससे स्पष्ट है कि भारतीय चित्रकला में चित्रांकन का स्वरूप निरंतर परिवर्तित होता रहा है। देश-काल वातावरण का प्रभाव जिस प्रकार साहित्य जगत को प्रभावित करता रहा है उसी प्रकार, चित्रकला जगत को भी। आदिकाल में भावभिव्यक्ति के लिये आदिमानव तथा बौद्ध भिक्षुओं ने बौद्ध जीवन की कथाओं को गुफा, कंदराओं तथा भित्तियों पर रेखाओं और रेखाओं के उभार द्वारा चित्रांकित किया गया जो मध्यकाल में जैन धर्म, पाल, मुगल तथा राजपूत राजाओं के प्रभाव में धार्मिक ग्रंथो, काव्यग्रन्थों तथा व्यक्ति चित्रों आदि विषयों को आधार बना कर लघु चित्रों के रूप में कपड़ों पर भी अंकित होने लगें। आगे चलकर पहाड़ी क्षेत्रों के शांतिपूर्ण वातावरण तथा पहाड़ी सौन्दर्य से प्रभावित होकर पहाड़ों की प्राकृतिक सुषमा भी चित्रांकन का विषय बन गयी। इन विषयों को सभी क्षेत्रों के प्रभाव से विशिष्ट रूप में रंगो के माध्यम से अंकित किया गया। आधुनिक काल में चित्रांकन का यही स्वरूप आधुनिक परिप्रेक्ष्य में पाश्चात्य चित्रकला की विदेशी तथा आधुनिक शैली से काष्ठफल्कों तथा कागजों पर उतरने लगा है। जिसके विषय भी समय के साथ दरबार तथा श्रृंगार के साथ कुछ अलग और आधुनिक तथा अधिक यथार्थवादी हो चुके हैं।

2.3 : चित्रांकन की विभिन्न शैलियाँ :

भारत अनेक धर्मो, संस्कृतियों, बोली व भाषा का देश रहा है। देश की इन विविधताओं में कला का रूप भी पीछे नहीं है क्योंकि, देश काल वातावरण का प्रभाव कला पर पड़ना स्वभाविक ही है चाहे फिर वह काव्य हो या काव्यचित्र ; चित्र हो या चित्र काव्य।

अपनी इसी प्रभावशील विशिष्टता के कारण भारत देश के कई राज्यों में अलग-अलग समय पर अलग अलग चित्रांकन की शैलियां प्रकाश में आती रही हैं जो भारतीय संस्कृति, कला व साहित्य के परचम को लहराती रही हैं। इन शैलियों का चित्रांकन की दृष्टि से अध्ययन इस प्रकार है -

- **पाल शैली :**

पाल शैली भारत के पूर्वी क्षेत्र बिहार व बंगाल में चित्रांकन की प्रचलित शैली थी। इस शैली के चित्रांकन का समय लगभग 730ई. से 1197ई. तक रहा है। इसके चित्र साक्ष्य आज भी मिलते हैं। इस शैली का सम्बन्ध पाल राजाओं से होने के कारण इसका नाम 'पाल शैली' पड़ा। पाल शैली के चित्रों में हमें दृष्टांत चित्र ही अधिक मिलते हैं। इस शैली के चित्र ताड़पत्रों पर निर्मित हैं, जिनके चित्र जातक कथाओं पर आधारित हैं।

इस शैली में ताड़पत्रों के बीच में चित्र बने हैं तथा चित्र के दोनों और पाँच-छ: रेखाओं में लिपि अंकित है। इन पांडुलिपियों में किसी चित्रकार का नाम नहीं मिलता। इनमें भगवान बुद्ध का ही जीवन-चित्रण जातक कथाओं के रूप में अधिक हुआ है। कुछ ऐसी ही चित्रित पांडुलिपियाँ नालंदा महाविहार और विक्रमशिला तथा देव बिहार में भी रची गयी हैं। तिब्बती इतिहासकारों ने धीमान तथा बितपाल नामक चित्रकारों को इस शैली का संस्थापक माना है। इस शैली को कुछ विद्वान नाग शैली भी कहते हैं। पाल शैली के चित्रों की विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

- पाल शैली के ये चित्र अधिकांशत: पोथी चित्र हैं जो ताड़पत्र पर बने हैं और आकार में लघु हैं। जो स्फुट चित्र इस शैल के प्राप्त हैं, वे बंगाल के पट-चित्र हैं।

- इन चित्रों में मानवाकृतियों के चेहरे सवाचश्म अधिक हैं। सर चपटे तथा नाक लम्बी है जो परले गाल से आगे निकली हुई होती है। आँखे बड़ी-बड़ी व पास-पास हैं। आकृतियों के हाथों तथा पैरों की मुद्राओं में अकड़न सी प्रतीत होती है जिसके कारण इन चित्रों में सजीवता का अभाव प्रतीत होता है।
- यह चित्र आकार में लघु हैं जिनका अंकन दोनों और से लिपिबद्ध पृष्ठ के बीच में किया जाता था। इसमें लाल, नीला प्रकृति से निर्मित रंगो द्वारा, सफ़ेद खड़िया, काला तथा इन रंगो के मिश्रण से बने गुलाबी, बैंगनी और फाखताई रंगों का प्रयोग मिलता है।
- इस शैली के चित्रों में काले रंग की रेखायें निब जैसी किसी वस्तु से खींची हुई लगती हैं, साथ ही प्रकृति चित्रण में आकाश के स्थान पर सिर्फ नारियल के पेड़ों का ही चित्रण हुआ है।

पाल शैली के चित्रों की ये पोथियाँ देश-विदेश के आजायबघरों तथा संग्रहालयों में सुरक्षित देखने को मिलती है।

➢ **जैन शैली :**

चित्रांकन की यह शैली पश्चिम भारत, दक्खनी पश्चिमी राजस्थान में पायी गयी है तथा इन क्षेत्रों पर जैन धर्म का विशेष प्रभाव होने के कारण ही इसे 'जैन शैली' कहा जाता है। चित्रांकन की यह शैली सातवीं शताब्दी में सम्राट हर्ष के समकालीन 'पल्लव राजा महेन्द्रावर्मन' के समय में बनी सित्तन्नवासल गुफा में निर्मित मूर्तियों व चित्रों में दृष्टिगोचर होती है। इस शैली के सबसे प्राचीन उदाहरण ताड़पत्र पर अंकित 'कालकाचार्य कथा' तथा 'कल्पसूत्र' के वे दृष्टांत चित्र हैं जिनमें पार्श्वनाथ, नेमीनाथ तथा ऋषभनाथ आदि के साथ अन्य

बीस तीर्थकर महात्माओं के चित्र हैं, "इन कलाकारों ने अति सूक्ष्म रेखाओं द्वारा विराट भावों को जिस प्रकार समाविष्ट किया है वह अन्यत्र नहीं देखने को मिलता।"[35] मुनि कांतिसागर ने जैन चित्रों के कुछ ग्रन्थों का उल्लेख किया हैं जिनमें 'श्रीकल्प सूत्र' आदि है। जैन शैली के नमूने अनेक व्यक्तिगत संग्रहों लखनऊ, इलाहाबाद, कलकत्ता आदि के संग्रहालयों में वस्तुचित्र के रूप में देखने को मिलते हैं, इसी प्रकार, "जिन भद्रसूरि के समय का जैन शास्त्रों पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालने वाला एक बहुमूल्य एवं वृहद् पट-चित्र जिसको मुग़ल राजपूत शैलियों के पूर्व का सर्वाच्च पट-चित्र कहा जाता है, 'ब्रिटिश म्यूजियम' में सुरक्षित है। 'नाहटा कला भवन' बीकानेर में भी इस प्रकार के सुंदर वस्त्रचित्र मिलते हैं।"[36] इस शैली के चित्रों की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

- जैन शैली के चित्र आरम्भ में जैन पोथियों पर ही अधिक मिलते थे पर चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में ये चित्र कागज पर भी अंकित होने लगे।
- "इन चित्रों में नेत्रों की बनावट विशेष होती है। आम की फाँक-सी दूर तक फैली कोनो वाली आँख, दूसरी आँख का दीखता हुआ भाग,गरूड़ की सी आगे निकली हुई नाक, छोटी ठुड्डी, ऐंठी अंगुलियाँ आदि इन चित्रों की विशेष पहचान है।"[37]
- जैन शैली के चित्रों में रंगो की विविधता का कम प्रयोग हुआ है तथा लाल व पीले रंगो का प्रयोग इन चित्रों में अधिक मिलता है।
- जैन शैली के चित्रों में वस्त्र रूप में धोती का सुंदर चित्रांकन हुआ है। साधुओं के वस्त्र मोती के समान सफेद व सोने के रंग के दिखाये गए हैं साथ ही उसके आभूषणों मे माला व मुकुट का विशेष प्रयोग हुआ है।

- 'नेमिनाथ चरित', 'कथारत्नसागर', 'त्रिपष्टिश्ल्गर पुरूष चरित' तथा 'अंग सूत्र' आदि बहुत से जैन ग्रंथो में इस शैली के चित्रांकन का प्रमाण मिलता है। इस शैली के कलाकारों में मार्कण्डेय पुराण, दुर्गासप्तशती, रति रहस्य व कामसूत्र ग्रंथो से सम्बन्धित ग्रंथो का भी जैन शैली में चित्रांकन किया गया है।

इसी जैन शैली का प्रगतिशील रूप हमें आगे राजपूत तथा चित्र शैली में देखने को मिलता है।

➢ **अपभ्रंश शैली :**

गुजरात में प्राप्त चित्रों का सबसे बड़ा संग्रह जैन पोथियों से सम्बद्ध था पर कुछ जैनेतर और वैष्णवों के ग्रंथो से सम्बन्धित चित्र गुजरात के बाहर अनेक प्रदेशों से भी प्राप्त हुए थे इसलिए इन चित्रों की शैली का निर्धारण व सामग्री वर्गीकरण की समस्या बनी रही। प्रारम्भ में इस शैली को जैन शैली कहा गया, फिर मालवा राजस्थान और गुजरात और दूसरे सम्प्रदाय के ग्रंथ में चित्रों की व्यापकता के आधार पर इसे 'गुजरात शैली' या 'पश्चिमी भारतीय शैली' कहना उपयुक्त समझा गया किन्तु, इस शैली के चित्रों का पश्चिम भारत के अतिरिक्त भारत के अन्य स्थानों से भी प्राप्त होने के कारण 'रायकृष्ण दास जी' ने इस शैली को 'अपभ्रंश शैली' नाम दिया। हिन्दी साहित्य में यह काल प्राकृत भाषाओं की रचना का काल है, जिसमें पिंगल, डिंगल व लोक भाषाओं में वीर काव्य की रचना हुई। इसी आधार पर साहित्य में इस काल को वीरगाथा काल, चारण काल या अपभ्रंश काल के नाम से पुकारा जाता है। साथ ही इस अपभ्रंश शब्द से कला की समस्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी परिलक्षित हो जाती है। ये शैली अपनी मूल विशेषताओं को खोकर अजन्ता का भ्रष्ट रूप प्रतीत होती है। अपभ्रंश शैली भारत में 11वीं से 16वीं शताब्दी तक प्रचलित रही। इस शैली के सादे व रंगीन सैकड़ो चित्रों से सुसज्जित महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'चित्रकल्पद्रुम' सर्वप्रथम अहमदाबाद के श्री साराभाई मणिक लाल

द्वारा प्रकाशित कराया गया जिसका लिपिकाल 1415 ई. का जौनपुर में उपलब्ध ग्रंथ है। बंगाल लाहौर तथा उड़ीसा में भी ऐसे चित्र मिलते हैं। 15वीं शताबदी के लगभग गुजरात तथा मेवाड़ में उदय होने वाली राजपूत शैली जिसके फलस्वरूप भारतीय चित्रकला की प्रसुप्त चेतना उद्बुद्ध हुई, वह अपभ्रंश शैली का ही परिष्कृत रूप है। डॉ. लोकेश चन्द्र शर्मा के शब्दों में, "राजपूत शैली में जो विषय वस्तु मिलती है, जिसमें रागमाला, श्रृंगार-कृष्णलीला आदि हैं उसकी सामग्री सब अपभ्रंश शैली से ली गयी है।"[38]

अपभ्रंश शैली की विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

- अपभ्रंश शैली में मानवाकृतियाँ विशिष्ट रूप से चित्रांकित हुई हैं। इन चित्रों में एक आँख चेहरे की सीमा रेखा से बाहर वाली जगह से निकली हुई होती है। आँखे परवल के आकार की जिसमें आँखों के काजल की रेखा कान तक गयी हुई चित्रांकित की जाती थी। नुकीली नाक, दोहरी ठुड्डी, हाथ मुड़े हुए तथा हाथों की उँगलियाँ ऐंठी हुई चित्रित की जाती थीं। कमर का भाग अति क्षीण होता था। इन चित्रों को देखने पर चित्रांकित मानवाकृतियाँ "रुई के गुड्डों या गुजरात की कठपुतलियों के समान प्रतीत होती है।"[39]
- इस शैली के चित्रों में प्रकृति का चित्रण इस प्रकार आलंकारिक रूप में है कि "पेड़ों का अंकन गुलदस्ते जैसा किया गया है। पशु-पक्षी कागज के खिलोने या कपडे के गुड्डे जैसे प्रतीत होते है।"[40] इससे इसकी स्वभाविकता नष्ट हो गयी है।
- अपभ्रंश शैली के चित्रांकन में अधिकांशत: चटकदार व उष्ण रंगो जैसे पीले और लाल रंगो का प्रयोग हुआ है।

इन चित्रों में प्रयुक्त स्वर्ण के कारण ये चित्र सुंदर दिखाई देते हैं, कहीं-कहीं रंग योजना अच्छी बन पड़ी है और मुद्राओं में अकड़न के बावजूद गति का आभास होता है।

➢ **मेवाड़ शैली** :

राजस्थान शैली में मेवाड़ शैली का विशेष स्थान है। इस शैली की सबसे प्राचीन चित्राकृति 1423ई. के लिपि काल वाली 'रुपासनाचर्यम' है। 16वीं शताब्दी में राजस्थान ने अपनी नवीन शैली मेवाड़ शैली विकसित की जिसका मुख्य केंद्र उदयपुर था। इस शैली का विकास मुगलों के आने के पश्चात् भी होता रहा। मेवाड़ चित्रांकन शैली में धार्मिक पुस्तकों जैसे - भागवतपुराण, रामायण आदि का चित्रण अधिक हुआ है। उदयपुर के शाहबदीन नामक चित्रकार ने सन् 1648 में भागवतपुराण की संचित्र प्रति का निर्माण इस शैली में किया जिसकी एक-एक प्रति जोधपुर तथा कोटा के पुस्तकालयों में भी है। रामायण पर 1649ई. में चितौड़ के कलाकार मनोहर द्वारा चित्रांकित ग्रंथ 'प्रिंस ऑफ़ वेल्स म्यूजियम' बम्बई में सुरक्षित है। इस शैली से निर्मित रागमाला के चित्रों में परिपक्वता है तो राग-रागनियाँ, रसिकप्रिया, रामचन्द्रिका का भी सुंदर चित्रण इस शैली में हुआ है। नायक-नायिका भेद तथा दरबारी जीवन का चित्रण यहाँ के चित्रकारों प्रमुख विषय रहा है। पृथ्वीराज रासो तथा दुर्गा महात्म्य का भी इस शैली में अद्भुत चित्रांकन हुआ है। मेवाड़ शैली के चित्रांकन की विशेषताएँ निम्न हैं :

- इस शैली के चित्रों में पुरुषों का चेहरा गोल व अंडाकार दिखाया गया है। मुख पर बड़ी बड़ी मूँछे और विशाल नेत्र तथा अधर प्राय: खुले हुए चित्रित किये गये हैं। स्त्रियों की आँखे मछली की आकृति की तरह तथा नथ युक्त लम्बी नासिका का चित्रांकन है।
- रंगो का प्रयोग सतर्कता से इन चित्रों में हुआ है। इनमें मुख्य रंग लाल, पीला तथा जोगिया है परन्तु पृष्ठभूमि में विभिन्न रंगों का प्रयोग है।

- इस शैली के चित्रों में प्रकृति-चित्रण अलंकारिक रूप में हुआ है। पर्वत तथा चट्टानों के चित्रांकन में मुगल तथा फारसी शैली का प्रभाव है तो जल को अपभ्रंश शैली के समान टोकरी बुनने वाले अभिप्रायों से चित्रित किया गया है। पृथ्वी को अधिकतर लाल हरे एवं पीले रंग से चित्रित किया गया है। इन चित्रों में कुंजो, लताओं, वृक्षों और पुष्पों की अधिकता है, जिनके चित्रांकन में नैसर्गिकता लाने की चेष्टा के बावजूद कृत्रिमता दिखाई देती है।
- "गहरी नीली या धुएँ के रंग की पृष्ठभूमि में सफेद बिंदियों को लगाकर चित्रकार ने तारों से पूर्ण रात्रि का दृश्य चित्रित किया है। कहीं-कहीं रात्रि में तारों के साथ चन्द्रमा भी अंकित है। दिन का दृश्य अंकित करने के लिए केवल आकाश का रंग बदल दिया गया है।"[41]

बिहारी सतसई, सूरसागर, पंचतन्त्र के उपाख्यान, कविप्रिया, मधुमालती, नल दमयन्ती जैसी अनेक कथाओं को मेवाड़ शैली में चित्रित किया गया है जिनमें ग्राम्य जीवन, उत्सव, युद्ध, आखेट सम्बन्धी दृश्यों, स्त्रियों के जल विहार, नायिकाभेद, राग-रागिनी एवं कृष्ण लीलाओं का चित्रांकन इस शैली के प्रमुख विषय रहे हैं।

➢ **किशनगढ़ शैली** :

यह राजस्थान की एक उन्नत शैली है जो सन 1735 से 1770 तक के समय में अपने पूर्ण रूप में पहुंची थी। इस शैली को उत्कृष्ट रूप प्रदान करने का श्रेय तीन व्यक्तियों को है- प्रथम कवि, चित्रकार, भक्त और कला प्रेमी राजा सावंत सिंह-जिनके आश्रय में यह कला उत्कर्ष पर पहुंची। मात्र तीन दशक की अल्पावधि में ही किशनगढ़ की कलात्मक गतिविधियाँ इस प्रकार से खिल उठी कि असाधारण सौन्दर्य वाली कृतियों का निर्माण होने लगा।

द्वितीय- महाराज सावंत सिंह की प्रेमिका 'बनी ठनी' को इसका श्रेय जाता है जिसका अद्वितीय रूप सौन्दर्य चित्रांकन में रूप-चित्रण का आदर्श बन गया तथा तृतीय सावंत सिंह के आश्रित चित्रकार मोरध्वज निहालचन्द्र को - जिन्होंने बनी ठनी और राजा सावंतसिंह को नायिका और नायक तथा राधा-कृष्ण के जीवंत रूप में चित्रित किया। किशनगढ़ शैली में ही प्रसिद्ध 'गीत गोविन्द' का भी चित्रण हुआ है। "साहित्यिक पृष्ठभूमि पर आधारित किशनगढ़ शैली के चित्र दर्शक को कविता और कला दोनों का रसास्वादन कराने में पूर्ण सक्षम हैं।" [42] भागवत पुराण तथा नागरीदास द्वारा रचित 'बिहारी चन्द्रिका' पर भी इस शैली में बहुत चित्र रचे गए हैं। व्यक्ति चित्रों में नवाबों, बादशाहों तथा संतो के चित्र प्रमुख रूप से अंकित हुए हैं।

इस शैली की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

- इस शैली की मुख्य विशेषता नारी चित्रण है। इसमें हुए नारी चित्रांकन की तुलना काँगड़ा शैली में चित्रित नारी से की जा सकती है। स्त्रियों के चेहरे कोमलता लिए, भारीपन व रुक्षता शून्य लताओं के समान पतला, लचकदार व छरहरा शरीर इस शैली में चित्रित है। चित्रों के अंकन में चेहरे लम्बे हैं जिनमें माथा ऊँचा है तथा नाक लम्बी व नुकीली है और ठोड़ी भी थोड़ी लम्बी चित्रित हुई है। खंजन पक्षी के आकार की तरह नेत्र जो पीछे तक खींचे हुए नेत्र हैं तथा भृकुटी धनुषाकार सुंदर है।
- मेवाड़ शैली की भांति रात्रि के दृश्य इस शैली में निपुणता से चित्रित हुए हैं। इन चित्रों में प्रतीकात्मता भी है।
- इन चित्रों में भावुकता तथा प्रकृति सजीव रूप में विद्यमान है। झील के दृश्यों में भी चित्रकारों ने प्राकृतिक सौन्दर्य को बड़ी सफलता से चित्रित किया गया है।
- पर्दे, फर्श के कालीन तथा कपड़ों पर सुंदर चित्रांकन इस शैली में हुआ हैं।

किशनगढ़ शैली के ये चित्र आकार में थोड़े बड़े है। रूपनगर व किशनगढ़ दो स्थानों पर यह शैली विकसित हुई है। इसमें राधा कृष्ण की प्रेम-लीला, प्रिय-प्रियतम का मधुर मिलन तथा भाव-चित्रण जहां चित्रकारों को अभीष्ट रहा है वहीं कृष्ण भक्त कवियों की रचनाओं से प्रेरित होकर गीत गोविन्द, भागवतपुराण, रुक्मणिहरण आदि के चित्रांकन में भी कलाकारों ने अपना जादू फेरा है।

➢ **बीकानेर शैली** :

राजस्थान के अन्य देशों की भांति बीकानेर में भी स्थानीय विशेषताओं से युक्त मौलिक चित्र शैली का विकास 16वीं सदी के अंत में हुआ। बीकानेर के राजा रायसिंह को कला संग्रह का बड़ा शौक था इसलिए वे मुगल दरबार से कुछ दक्ष कलाकारों को अपने साथ ले आये जिन्होंने इस शैली को शिखर तक पहुँचाया। इन कलाकारों में मुख्य रूप से 'उस्ता अली रजा' तथा 'उस्ता हामिद रूकनुद्दीन' थे। राजा राय सिंह के कला प्रेमी होने के बावजूद भी उस समय की एकमात्र सचित्र पांडुलिपि कालिदास कृत 'मेघदूत' ही प्राप्य है जो राजपूत चित्रकला के उद्गम को समझने के साथ बीकानेर शैली की आरम्भिक अवस्था को जानने के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। आगे चलकर राजा रायसिंह के पौत्र करन सिंह के शासन में हामिद रूकनुद्दीन ने राजदरबार में रहकर आचार्य केशवदास की 'रसिकप्रिया' पर श्रेष्ठ चित्र इस शैली में अंकित किये। इसके पश्चात बीकानेर शैली में चित्र निर्माण लगातार होता रहा। करनसिंह के पुत्र अनूप सिंह के समय में रसिकप्रिया, बारहामासा, भागवत पुराण से सम्बन्धित चित्र बीकानेर शैली में बने हैं। रागमाला, शिकार के दृश्य राजपरिवार के लोगों के चित्र भी काफी तादाद में इस शैली में चित्रित हुए हैं जिनमें 'स्त्री बच्चे से खेलते हुए' नामक चित्र बीकानेर शैली की विशेषताओं को आत्मसात करने वाला उत्कृष्ट चित्र है। डॉ. रीता गुप्ता इस शैली के सम्बन्ध में लिखती हैं कि "बीकानेर चित्र परम्परा प्राय: 17 वीं शताब्दी में देखने को मिलती

है। यहाँ की अच्छी कलाकृतियाँ को 'हरमन गोएट्ज' ने प्रकाशित किया। बीकानेर शैली के चित्रों के प्रमुख विषय है, राजा-महाराजाओं, राजकुमारियों-राजकुमारों के व्यक्ति चित्र, दरबार एवं आखेट के दृश्य जो यथार्थ अंकन के आधार पर बनाये गए हैं। राग-रागनियों के चित्रांकन की प्रतिलिपियाँ, रसिकप्रिया, भागवत पुराण, नायिका-श्रृंगार, गीत गोविन्द एवं अन्य श्रृंगारिक आख्यानों को भी बीकानेर शैली के चित्रकारों ने अपनी कूची के माध्यम से रंगो में बांधा है।"[43] बीकानेर चित्रांकन शैली की शैलीगत विशेषताएँ निम्नवत हैं।

- इस शैली में कोमल रंग योजना होने के कारण चित्रों में सूफियानापन का एहसास होता है।
- इस शैली में चित्रांकित मानवाकृतियों के होंठ सिकुड़े हुए, नेत्र निमीलित, छोटी ठुड्डी, कलाईयाँ पतली हैं। पुरुषों की मूँछे कुछ नीचे की ओर झुकी हुई चित्रित हुई हैं।
- मुगल प्रभाव के कारण भवनों तथा गुम्बदो का विशेष चित्रांकन भी इस शैली में मिलता है।
- बीकानेर शैली में लघुचित्र तथा भित्ति चित्र दोनों ही निर्मित हुए हैं। इस शैली में बादलों का चित्रांकन छल्लेदार रूप में हुआ है साथ ही वर्षा ऋतु के चित्रों में बिजली व सारस युगल का भी सुन्दरता से चित्रांकन इन चित्रों में परिलक्षित होता है।

इस प्रकार बीकानेर शैली की लघु चित्रकला में जहां एक और मुगल चित्रकला से सामंजस्य है वही पश्चिमी भारतीय चित्रकला तथा राजपूत चित्रकला की विशेषताएँ भी अंतर्निहित हैं। अपनी उदात्त कल्पना, लयबद्ध रेखांकन, सुकुमार रंग योजना एवं विशिष्टता के लिए बीकानेर शैली प्रसिद्ध है।

➢ **बूंदी शैली :**

यह शैली सत्रहवी शताब्दी के प्रारम्भ में कोटा, बूंदी और झालवाड़ में पनपी। पहले यह मेवाड़ शैली के अंतर्गत ही एक स्वतंत्र शाखा के रूप में थी जो कि कुछ समय के पश्चात अपने से मुगल प्रभाव को समाप्त कर मेवाड़ में पृथक नयी शैली के रूप में उभरकर आई। इस शैली की विशेषताएँ इस प्रकार हैं।

- विशेष रूप से नायक नायिका, बारहमासा, ऋतु चित्रण, भागवतपुराण पर आधारित कृष्ण लीला एवं रीतिकालिन कवियों की रचनाओं से सम्बन्धित कई चित्र इस शैली के चित्रों के विषय रहे हैं।
- इस शैली की मानवाकृतियों में मेवाड़ से कुछ साम्य होते हुए भी इसकी भाव भंगिमाओं में भिन्नता है। स्त्रियों की आकृतियों का चित्रांकन साधारण रूप से लम्बी और स्फूर्ति से भरी हुई इकहरी बदल वाली के रूप में है। गोल चेहरों पर बहुत महीन काली रेखा से चेहरों का रेखांकन, भावपूर्ण नेत्र, नुकीली नासिका, दोहरी एवं कुछ आगे निकली हुई ठुड्डी, पीछे की और जाता हुआ ललाट, लम्बी बाहें और मेहँदी की लालिमा से युक्त अंगुलियाँ इस शैली में विशिष्ट रूप से चित्रांकित हैं। पुरूष आकृतियों का चित्रांकन लम्बा कद, भरा हुआ मुख, बड़ी मूँछे व गोलाकार ललाट के साथ पुरुषत्व को प्रदर्शित करते हुए हुआ है।
- सघन प्राकृतिक सुषमा बूंदी शैली की विशेषता है। इसके साथ ही पशु-पक्षियों का चित्रण यथार्थपूर्ण, सशक्त एवं सजीव छाया प्रकाश का संयोजन, इसके चित्रों को सुंदर और भावपूर्ण बनाता है।

- नारंगी तथा हरे रंग की बूंदी के चित्रों में प्रधानता है। इसके अलावा पीला, लाल, हरा, काला, नीला, गेरूए रंगों का भी प्रयोग यथावत हुआ है। चित्रों में वेशभूषा, शैय्या, प्रकृति एवं पात्रों में अलंकरण को दर्शाने हेतु सोने तथा चांदी के रंगो का भी प्रयोग किया जाता था।

बूंदी शैली के इन चित्रों में रेखाएँ कोमल, गतिपूर्ण एवं भावप्रधान है। इस शैली के चित्र एक और अपनी निजी विशिष्टताओं के कारण प्रसिद्ध हैं तो दूसरी और राजस्थानी शैलियों में अपनी मौलिकता के कारण।

➢ **कोटा शैली** :

कोटा और बूंदी शैली प्रारम्भ में एक ही मानी जाती थी परन्तु 17वीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश में कोटा शैली का अपना निजत्व उभरता दिखाई पड़ता है। कोटा राज्य की नीव महाराज माधोसिंह ने 1631ई. में रखी। यद्यपि कोटा, बूंदी राज्य का हिस्सा था तथापि दोनों के चित्रों में शैलीगत पर्याप्त अंतर है। इस समय के प्रमुख चित्रकारों में लच्छीराम, रघुनाथ, गोविन्दराम तथा नूरमुहम्मद आदि हैं, जिन्होंने राजकीय संरक्षण में रहकर अपनी कलात्मक प्रतिभा के अद्वितीय नमूने प्रस्तुत किये। प्रारम्भ में दरबारी दृश्य और जुलूस, श्रीकृष्ण की जीवन लीला से सम्बन्धित चित्र, राजाओं के शबीह आदि कोटा शैली के चित्रकारों के प्रिय विषय रहे परन्तु बाद में बारहमासा, राग-रागनियों, नायिका-भेद, युद्ध-दृश्य, शिकार-दृश्य, पेड़-पौंधो, चट्टानों, वन्य पशु-पक्षी आदि प्रकृति से सम्बन्धी चित्रों का भी पर्याप्त अंकन इनमें देखने को मिलता है। कोटा शैली के चित्रों के विशेषताएँ-

- इस शैली के चित्रकारों द्वारा चित्रित नारी का अंकन पर्याप्त मात्रा में होने के बावजूद उसकी पूर्णरूपेण भावाभिव्यक्ति नहीं हो पायी है, आकृतियाँ मात्र मूर्तिवत मुद्राओं में दृष्टिगोचर होती हैं।
- नेत्रों को कुछ चित्रों में खंजन पक्षी की तरह बड़ा तथा सुंदर बनाया गया है तो कहीं-कहीं बादाम के आकार का चित्रित किया गया है।

कोटा शैली में लघुचित्र तथा भित्तिचित्र दोनों पर्याप्त मात्रा में बने हैं। जिनमें सुनहरे रंग का खूब प्रयोग है तथा इनमें रेखा सौन्दर्य इतना नहीं दिखता जितना कि अन्य राजस्थानी शैलियों में।

➢ **जयपुर शैली** :

जयपुर शैली मुगल प्रभाव के साथ 18वीं शताब्दी के प्रारम्भ में आई। इस शैली का उद्भव एवं विकास 1700 से 1900ई. तक माना जाता है। संवाई राजा जयसिंह कला के बड़े प्रेमी थे। इन्होने ही जयपुर नगर का निर्माण तथा वहाँ की दीवारों पर चित्र अंकित करवाये। इन चित्रों में अधिकतर मुगल शैली के चित्रों की ही नक़ल थी परन्तु कुछ स्वतंत्र चित्र भी इस समय के मिलते हैं। सचित्र ग्रंथ में 'बिहारी सतसई' यहाँ का मुख्य व प्रचलित चित्रांकित ग्रंथ है। जयपुर शैली के आरम्भ में कुछ भित्ति चित्र भी बने परन्तु बाद में श्रृंगारिक चित्र ही इस शैली में निर्मित हुए। महाराजा प्रताप सिंह के समय में यह शैली अपने चरम उत्कर्ष पर पहुंची। इनके कला प्रेमी और कृष्ण भक्त होने के कारण इससे संबंधित चित्रों की रचना इनके समय में हुई। इनमें राग-रागनियों तथा ऋतुओं का चित्रण भी विशेष है। इसी युग में अधिकतम लघुचित्रों का निर्माण हुआ जिनमें रंगों तथा रेखाओं का सौष्ठव दृष्टिगोचर होता है। इसकी शैलीगत विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

- रामायण, महाभारत, गीत गोविन्द तथा वात्स्यायन के कामसूत्र पर आधारित चित्रों की इस समय में रचना हुई।
- कृष्ण लीलाओं के चित्रों में भक्ति तथा श्रृंगार का अनूठा समन्यव इस शैली के चित्रों में देखने को मिलता है।
- राग-रागनियों का जयपुर शैली में विशेष सौन्दर्य के साथ चित्रण हुआ है। यहां के चित्रों में 36 रागनियों का श्रृंखलापूर्ण चित्रण हुआ है जिनमें नायक-नायिका के विभिन्न रूप चित्रांकित हैं।
- इस शैली के मानवाकृतियों के चित्रण में पुरूष तथा स्त्रियों के मुख गोल बनाये गए हैं तथा इन चित्रों का आकार भी मध्यम है। स्त्रियों के चित्रण में मत्स्याकार आँखे, कुछ मोटे होंठ, क्षीण कटि तथा फैले हुए वक्ष का चित्रांकन है। पुरूषाकृतियों को प्राय: "पगड़ी बांधे, घेरदार जामा पहने तथा दुपट्टे से कमर कसे हुए बनाया गया है। साधारणत: भरा हुआ शरीर, मंझले आकार की गोल नाक, कान तक बड़े बाल तथा पीलापन लिए चेहरे बनाये गये है।"[44]
- इन चित्रों में लाल, नीले व सुनहरी रंगो का बाहुल्य है। इसके साथ ही बेल-बूटेदार हाशिये का भी प्रयोग हुआ है जो मुगल शैली की देन है।

जयपुर शैली का प्रभाव नवलगढ़, सीकर, झुंझुन, लक्ष्मणगढ़, और पिलानी पर भी पड़ा जिसके कारण यहाँ के चित्रों पर जयपुर शैली की छाप दृष्टिगोचर होती है। इस शैली के प्रमुख चित्रकारों में, मोहम्मद शाह, साहिबराम, रामजीदास, हीरानंद, त्रिलोक और गोविन्द रहे जिन्होंने पशु-पक्षी, शिकार आदि सुंदर चित्रों की रचना के साथ व्यक्ति चित्रों का भी निर्माण किया।

➢ **मुगल शैली :**

मुगलों के भारत में आने पर वह अपने साथ एक विशिष्ट शैली भी ले कर आये जिसे 'ईरानी शैली' कहा जाता है। मुगलों के भारत आने के पश्चात भारतीय चित्रों को उन्होंने देखा तो भारतीय कलाकारों का बहुत सम्मान किया तथा इससे प्रभावित हुए बिना वह नहीं रह सके जिसके कारण कुछ ईरानी और कुछ भारतीय कला गुणों के सामंजस्य से एक सर्वथा नवीन शैली का निर्माण हुआ जिसको 'मुगल शैली' नाम दिया गया।

राज्याश्रित चित्रकार दरबार में ही रहते थे जिसके कारण प्रारम्भ में मुगल शैली के चित्र केवल राजदरबार तथा व्यक्ति चित्रों आदि तक ही सीमित थे। भगवतशरण उपध्याय के शब्दों में, "मुगल शैली के चित्रों में विशेषत: तीन तरह के चित्र पाए जाते है-- व्यक्ति चित्रण, पुस्तक चित्रण और विविध स्थितियों के प्रकृति अथवा सौन्दर्य या घटना चित्रण।" [45] धीरे धीरे इन चित्रों का विषय क्षेत्र विस्तृत हुआ। भारतीय चित्रों में चित्रित धर्म ग्रंथों का भी प्रभाव इन पर पड़ा जिससे मुग़ल चित्रकारों ने भारतीय ग्रंथ रामायण, महाभारत, नलदमयन्ती, पंचतन्त्र आदि का भी सचित्र अनुवाद किया। मुगल शैली के इन चित्रों की विशेषताएँ निम्नवत हैं -

- इस शैली की सबसे बड़ी विशेषता व पहचान इसमें बने एक चश्म चेहरे हैं। जो कि इस शैली को राजस्थानी शैली की देन है। जितने भी व्यक्ति चित्र इस शैली में बने उन सभी के चेहरे एक समान मिलते हैं। कुछ चेहरे तो इनमें केवल रेखाओं से ही बने हुए हैं परन्तु देखने में यह भी पूर्ण कलात्मक व सजीव हैं।
- प्रत्येक चित्र में बेल-बूटे से सजे हाशिये इन चित्रों में दृष्टिगोचर होते हैं जिसमें कहीं-कहीं मुख्य चित्र उस सजावट से फीके पड़ जाते हैं।

- मुगल शैली की एक विशेषता चित्रों में पशु और पक्षियों का चित्रण भी है। साथ ही, हाथियों के लड़ाई के दृश्य, शिकार आदि के दृश्य भी सुचारू रूप से इस शैली में चित्रित मिलते हैं। साथ ही इस शैली में प्रकृति का भव्य चित्रण हुआ है। पेड़, नदी, पहाड़ आदि का बहुत ही बारीकी से चित्रांकन इस प्रकार हुआ है कि तीन प्रकार के पेड़ों के चित्रण में भी भिन्नता अलग से दिखाई दे जाती है। जंगल के दृश्यों का चित्रांकन भी स्वाभाविक एवं सौन्दर्यपूर्ण है।

- मुगल शैली के चित्रांकन में महीन रेखाओं पर इतना अधिक ध्यान चित्रों की सजीवता में बेजोड़ है। व्यक्ति चित्रों में इन रेखाओं के सुंदर और सूक्ष्मांकन के सम्बन्ध में डॉ. लोकेश चन्द्र शर्मा का कथन है कि "चेहरे की दाढ़ी का एक-एक बाल बढ़ाने का प्रयत्न इन चित्रों में मिलता है। चेहरे पर जो हल्का रेशा होता है, गालों पर उसको भी इतनी ही मेहनत से इन मुगल शैली के चित्रकारों ने बनाया कि आश्चर्य होता है। उस समय अणुवीक्षण यंत्र (खुर्दबीन) तो होता नहीं था फिर इतनी महीनता का जो कार्य हुआ है वह वास्तव में प्रशंसनीय है।"[46]

- मुगल शैली के चित्रों में साफो में रत्न जड़ित स्वर्ण कलगी पर सोने के रंगो का अतिसुन्दर प्रयोग हुआ है। गले की मालाओं, पैरो की जूतियों तथा वस्त्राभूषण में भी सोने के रंगो का प्रयोग चारुता से हुआ है।

मुगल शैली की इतनी विशिष्टताओं के बावजूद भी दरबारी वातावरण से बाहर निकलकर जनसाधारण के जीवन की झांकी के दर्शन करा पाने की असफलता के कारण यह कला मुगल दरबार में उत्पन्न होकर वहीं समाप्त हो गयी।

➢ **गुलेर शैली** :

गुलेर शैली लगभग 1755 ई. तक कुछ अपने निश्चित निखरे रूप में आ गयी थी तथा इसके बीस-तीस साल तक यह शिखर पर रही। पहाड़ी कला में काँगड़ा शैली को रंग-रूप देने व ऊँचाई तक पहुँचने का महत्त्वपूर्ण कार्य भी गुलेर शैली द्वारा ही हुआ।

गुलेर का महत्त्व इसकी भौगोलिक स्थिति के कारण भी है। काँगड़ा के दक्षिण के मैदानों से अधिक निकट होने के कारण एक तरफ इस पर पंजाब का अधिक प्रभाव पड़ा तो दूसरी और मुगल संरक्षण मिलने के कारण इसकी प्रतिष्ठा भी बनी रही। जिन कलाकारों के काँगड़ा पहुँचने से वहां चित्रकला पनपी वे गुलेर से ही सम्बन्धित थे। इस कला का पतन भी मुगल राज्य के साथ ही होने लगा था।

- गुलेर शैली के चित्रों का विषय रामायण तथा महाभारत की प्रमुख घटनायें रही हैं जिनमें राम व रावण की सेना का चित्र तथा रावन का सीता हरण चित्र मुख्य है।
- इस शैली में राजपरिवार व दरबारों के चित्रों का अंकन भी हुआ है जिनमें राजा गोवर्धन सिंह का घोड़े पर सवार चित्र तथा दरबार के कुछ चित्र प्राप्त भी हुए हैं।
- स्त्रियों का सुंदर चित्रण भी इस शैली में हुआ है, जिनके अंग-अंग के सौन्दर्य के अंकन में लय तथा रूमानी आकर्षण है। ये चित्र कुछ हद तक काँगड़ा के चित्रों से मिलते-जुलते होकर भी अपनी मौलिकता लिए हुए हैं।

व्यक्ति चित्रों में सजीवता, वर्णित विषयों का सूक्ष्म चित्रांकन मुद्राओं के सुंदर व स्पष्ट अंकन के साथ प्रेम और अनुराग की सजीव अभिव्यक्ति गुलेर शैली के चित्रों की विशेषताएँ है जिनसे इस शैली में प्राकृतिक सौन्दर्य पैदा हो गया है।

➢ **काँगड़ा शैली** :

काँगड़ा शैली का जन्म 18वीं शताब्दी के अंत में हुआ इस संसार प्रसिद्ध शैली में मुगल तथा राजस्थानी दोनों कलाओं का सम्मिश्रण दिखाई देता है अर्थात् "काँगड़ा की लोक कला में मुगल कला की भव्यता से काँगड़ा शैली का जन्म हुआ।"[47]

इस शैली के चित्रों के वातावरण में बादल, पेड़, फूल आदि की पृष्ठिभूमि पर प्रणयाभिभूत नारी की प्रेम विह्वलता को चित्रित किया गया है। इस शैली के मुख्य केंद्र तीरा सुजानपुर और नूरपुर हैं। काँगड़ा कला को प्रश्रय देने वालों में हमीरचन्द, अभयचन्द, घमण्डचन्द, तथा संसारचन्द का नाम उल्लेखनीय है जिनमें संसारचन्द का समय चित्रांकन की दृष्टि से काँगड़ा शैली में स्वर्ण युग रहा। चित्रकारों ने पूर्ण एकाग्रचित होकर सीमित विषयों की सुन्दरतम चित्र शैली में तन्मयता से इन चित्रों का निर्माण किया है। पहाड़ी प्रदेश में कृष्ण भक्ति सर्वोपरि होने के कारण अधिकतम चित्र इस शैली के भी कृष्ण लीलाओं पर ही आधारित हैं। 'भागवतपुराण', 'गीतगोविन्द', 'बिहारी सतसई', 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया' इस शैली में विशेषत: चित्रांकित हुई हैं। काँगड़ा शैली में ही बिहारी सतसई के 40 चित्र मिलते हैं।

काँगड़ा शैली के चित्रों का मुख्य विषय प्रेम है। प्रेम के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का सुंदर चित्रण इस शैली में हुआ है। डॉ. रीता गुप्ता के शब्दों में, "काँगड़ा शैली में प्रेम के विभिन्न भावों का छन्दमय, काव्यमय और चित्रात्मक रूप अंकित है।"[48] वियोग की तीनों स्थितियों पूर्वराग, मान, प्रवास तथा संयोग के हाव-भाव को काँगड़ा के चित्रकारों ने सजीवता से चित्रांकित किया है। नायिका-भेद का विशद व सौन्दर्यपूर्ण चित्रण, जनसामान्य का सुचारू चित्रांकन, उत्सवों के चित्र, बारहमासा में ऋतुओं का अपूर्व चित्रांकन, व्यक्ति चित्रों का

निर्माण आदि काँगड़ा शैली के विविध विषयात्मक सजीव चित्रांकन काँगड़ा शैली की उत्कृष्टता का परिचयात्मक है।

काँगड़ा का प्राकृतिक सौन्दर्य चित्रकारों के लिए प्रेरणा स्रोत रहा है परन्तु राजा संसार चन्द की मुत्यु के बाद जैसे काँगड़ा की चित्रकला का सूर्य अस्त होने लगा।

काँगड़ा शैली के चित्रकारों में मनकु, खुशाला, किशनलाल, वसिया, पुरखू, फत्तू आदि चित्रकार आते हैं जिनकी विशेषता थी कि ये चित्र पर अपना नाम नहीं लिखते थे। काँगड़ा शैली के चित्रों की प्रमुख विशेषताएँ :

- काँगड़ा शैली के चित्रों में दृश्यों की प्रधानता तथा रोमांच है।
- इस शैली में चित्रण कम होने पर भी भावों का बड़ा सजीव हाव-भावपूर्ण चित्रांकन हुआ है।
- इस शैली के चित्रों में स्त्रियों का चित्रण बहुत प्रभावशाली है। इनका चित्रांकन छरहरे शरीर, धनुषाकार आँखे, कोमल तथा लयदार बनी हुई उँगलियाँ आदि भारतीय परम्परा के अनुसार हुआ है, "गोल मुखाकृति, बड़ी-बड़ी भावप्रवण आँखे, पीनवक्ष तथा सुंदर उँगलियाँ इन चित्रों में स्त्री सौन्दर्य की अभिवृद्धि करते हैं।"[49]
- प्रकृति का मनोहारी चित्रण भी काँगड़ा शैली की एक अन्यतम विशेषता है। वृक्ष, बादल, जल, जंगल, पहाड़ सभी के दृश्य इस शैली में बड़े आकर्षक व सजीव हैं, "कल-कल करते झरने व जल का चित्रण बड़ी सफलता से किया गया है। काली रात या चांदनी रात के चित्रण में पूर्ण रूप से कलाकार को सफलता मिली है। चारों ऋतुओं का बड़ी सजीवता से चित्रण हुआ है।.... वर्षा ऋतु में आकाश में बिजली, वर्षा आदि

का सुंदर चित्रण हुआ है। फागुन में होली खेलते हुए नर-नारी उस ऋतु के सुखद वातावरण को दर्शाते हैं।"[50]

- इस शैली के कलाकारों द्वारा सीधे तौर पर लाल, पीला और नीला रंग प्रयोग में अधिक लाया गया है जबकि मिश्रित रंगो में गुलाबी, हरा, बैंगनी आदि परिप्रेक्ष्यानुसार उपयोग में लाया गया है, "रंगो के संयोजन में काँगड़ा के कलाकारों ने कमाल कर दिखाया है जो भी वातावरण दिखाया है उसमें उसी से सम्बन्धित रंगो का प्रयोग हुआ है।"[51]

- अजन्ता के समान ही रेखाओं से भावाभिव्यक्ति काँगड़ा के चित्रों की विशिष्टता है। गिलहरी के बालों से निर्मित तूलिका के प्रयोग से उभारी गई महीन रेखाएँ आकृतियों में लय तथा छंद पैदा करती है। अंग-प्रत्यंग की सुन्दरतम रचना रेखाओं द्वारा ही इस शैली में सजीव बन पड़ी है।

- प्रकृति का चित्रण प्रतीकात्मक रूप से इस शैली में हुआ है। जिसमें पशु-पक्षी, पेड़-पौधे सभी किसी न किसी श्रृंगारिक भाव के रूप में अंकित हुए हैं।

डॉ. एम. एस. रंधावा के शब्दों में, "काँगड़ा की चित्रकला रंगमंच संगीत के अलावा कुछ नहीं है।"[52] अत: जो कमी चित्रांकन की राजस्थानी तथा मुगल शैली के चित्रों में बाकी रह गयी थी उसे काँगड़ा शैली के चित्रों में पूर्णता प्राप्त हुई।

➢ **बसोहली शैली** :

बसोहली शैली के चित्रों का सर्वप्रथम उल्लेख आर्क्योलौजिकल सर्वे ऑफ़ इण्डिया की वार्षिक रिपोर्ट में सन् 1918-19 में मिलता है। काँगड़ा शैली के उत्थान में जो स्थान राजा संसारचन्द का है वही स्थान बसोहली शैली के उत्थान में राजा कृपाल पात्र का है। बसोहली

शैली के चित्र अधिकतर लोक कला पर आधारित सादे हैं। वैष्णव धर्म के प्रचार का प्रभाव बसोहली शैली पर पड़ने के कारण विष्णु और उनके दशावतारों का चित्रण तथा रामायण, भागवत और महाभारत का चित्रांकन इस शैली में हुआ। राजा कृपाल ने भानुदत्त कृत 'रसमंजरी' के नायक-नायिका भेद तथा श्रृंगारिक चित्रणों पर आधारित चित्र विशेष रूप से अंकित कराये। रागमाला तथा प्रकृति का चित्रण भी इस शैली में सुंदर हुआ है। बसोहली शैली के चित्रांकन की कुछ विशेषताएँ निम्न हैं :

- बसोहली शैली की मुख्य विशेषता पद्माकर, कानों तक स्पर्श करते तथा रस भाव पूरित नेत्रों का चित्रांकन है।
- इस शैली में चटख रंगो से मानवाकृतियों का चेहरा बनाने की एक नई प्रणाली मिलती है। चेहरे की बनावट में ढालदार माथा, ऊँची नाक, कमल के समान विशाल नेत्र हैं। शरीर बादाम के रंग के समान इस शैली में चित्रांकित हुआ है। डोगरा लोक गीतों की प्रसिद्ध नायिका गंगी से बसोहली चित्रकारों ने प्रेरणा लेकर उसी के प्रभाव में सुंदर आभूषणों से युक्त, झीने वस्त्रों से सुसज्जित तथा बड़े-बड़े कामासक्त नेत्रों वाली नारी के आकर्षक चित्र बनाये हैं। इन "बसोहली के चित्रों में प्रेम तथा रोमांच कूट-कूट कर भरा है।"[53]
- हाथों की विविध मुद्राओं द्वारा भावों का प्रदर्शन भी बसोहली शैली के चित्रों की एक विशेषता है।

बसोहली शैली के इन चित्रों में लय तथा गति होने के कारण इनमें सजीवता है। यह चित्र अभिजात्य से दूर लोक कला से परिपूर्ण है। जिसके चित्रकारों में मनकु, देवीदास, सजनू, डोंडी तथा नैनसुख के नाम प्रमुख हैं।

➢ **चम्बा शैली** :

चम्बा शैली का उदय 18 वीं शताबदी के मध्य में राजा उदयसिंह के राज्यकाल में हुआ माना जाता है। बसोहली शैली का प्रभाव आस-पास के क्षेत्र में लगातार फ़ैल रहा था जिनमें चम्बा भी एक था। बसोहली और गुलेर की शासन व्यवस्था डावांडोल होने पर वहाँ के कलाकार चम्बा की तरफ आ गये जिससे चम्बा शैली ने धीरे-धीरे चित्रों में अपना निजत्व बना लिया। राजा जयसिंह, दलेल सिंह, उमेद सिंह, राज सिंह व जीत सिंह ने चम्बा में चित्रकला को काफी बढ़ावा देकर उसका विकास किया। इस समय तक चम्बा की यह कला राजदरबार से जनसामान्य तक पहुँच गयी थी जिससे इसने धीरे-धीरे लोक कला का रूप ग्रहण कर लिया।

चम्बा शैली में दो तरह के चित्रण मिलते हैं व्यक्ति चित्र व पौराणिक चित्र। व्यक्ति चित्रों में राजाओं के चित्र है जिनमें अधिकतर को हुक्का पीते दिखाया गया है। पौराणिक चित्र भी इस शैली में तीन विषयों को लेकर अधिक चित्रांकित किये गए हैं - उषा-अनिरुद्ध, कृष्ण-रुक्मणि तथा कृष्ण और सुदामा की कथाएँ। वाल्मीकि रामायण के छ: काण्ड व दुर्गा सप्तशती के साथ ही छ: ऋतुओं के छ: चित्रों का अंकन भी इस शैली चित्रों के में मिलता है।

चम्बा शैली के चित्रों की विशेषताएँ हैं :

- इस शैली में स्त्रियों का चित्रण कोमलांगी है। लम्बी नाक, छरहरी काया व माथा तथा नाक एक ही रेखा में प्राय: स्त्रियों के चित्रांकन में दृष्टिगोचर होती है।

- दैनिक जीवन के सुदूर चित्रों में दर्पण के सामने श्रृंगार तथा केश सज्जा करती हुई महिला, चूल्हे पर भोजन पकाती महिला व झूला झूलती महिलाओं आदि का बहुत ही मनोहारी चित्रांकन हुआ है।
- रंग प्रयोग इस शैली में चम्बा पहाड़ी की अन्य शैलियों से अलग तथा अधिक सुंदर ढंग से हुआ है जिसमें कहीं-कहीं पार्श्व भूमि बिलकुल लाल रंग से बनी हुई चित्रित है। सोने चांदी के रंगो का प्रयोग भी इस शैली में बहुतायत से हुआ है।
- चम्बा शैली में बारहामासा के चित्र कृष्ण-राधा की प्रणय लीलाओं के कारण बहुत आकर्षक बन पड़े हैं।

➢ **कुल्लू शैली** :

कुल्लू की चित्रांकन शैली पर सर्वप्रथम प्रकाश सर.जे. सी. फ्रेंच ने डाला। उन्होंने 'हिमालयन आर्ट' नामक ग्रंथ में कुल्लू का नाम लिखा। बसोहली शैली का कुल्लू पर प्रभाव अवश्य पड़ा परन्तु बाद में यह एक स्वतंत्र शैली के रूप में हमारे समक्ष आती है। एक महत्त्वपूर्ण भित्ति चित्र की प्रतिलिपि के निर्माण के उद्देश्य से ललित कला अकादमी द्वारा प्रसिद्ध चित्रकार जगदीश मित्तल को कुल्लू की राजधानी सुल्तानपुर भेजा गया जहां पर चित्र निर्माण के समय उन्हें एक कमरे में रामायण पर बना एक भित्ति चित्र मिला। जिस महल से यह भित्ति चित्र प्राप्त हुआ उसे राजा प्रीतम सिंह ने बनवाया था। इस चित्र के पास ही प्रीतम सिंह के पुत्र राजा विक्रम सिंह का भी व्यक्ति चित्र बना हुआ मिला तथा उसके साथ ही 'मालती माधो' नामक विचित्र ग्रंथ भी मिला जिस पर 'भगवान' नामक चित्रकार द्वारा 1799 ई. में राजा प्रीतम सिंह के राज्य में उसे बनवाने का उल्लेख है। यहीं से सन 1794 ई. का चित्रित

'भागवतपुराण' भी प्राप्त हुआ। इसके अलावा कुछ चित्र कुल्लू के अन्य राजाओं तथा रागमाला आदि के भी मिले जिससे इन बातों पर स्पष्टत: प्रकाश पड़ता है कि कुल्लू शैली में धार्मिक ग्रंथो रामायण, महाभारत, भागवतपुराण के साथ व्यक्ति, राजाओं तथा रागमाला आदि के चित्रों का भी निर्माण हुआ है। कुल्लू शैली के चित्रों की विशेषताएँ हैं :

- इस शैली के चित्र भित्ति चित्र व लोक चित्र दोनों ही हैं।
- इन चित्रों में स्त्रियों के सिर बसोहली शैली के समान ढालदार अंडे के समान है। उनके हाथ लम्बे तथा पतली कलाइयों के साथ नाक कुछ ऊपर उठी हुई चित्रित हुई है। इन चित्रों में स्त्रियों की चोली कमर तक लम्बी है जो झालर से सजी हुई है।
- विलो के पेड़ का लगभग सभी चित्रों में प्रयोग यहाँ चित्रांकन की एक औपचारिक सज्जा प्रतीत होती है।

➢ **गढ़वाल शैली** :

गढ़वाल शैली का पूर्ण विकास 17वीं और 18वीं शती के मध्य में माना जाता है। इस शैली का प्रमुख चित्रकार भोलाराम था जिसके चित्रांकन के प्रभाव से गढ़वाल शैली की चित्रकला विकसित हुई। आरम्भ में यह शैली अवश्य निम्न स्तर की थी परन्तु बाद में काँगड़ा शैली के प्रभाव से यह निखर उठी। श्री वाचस्पति गैरोला के मत से "गढ़वाल शैली काँगड़ा की एक शाखा के रूप में 18वीं शताब्दी के अंत तथा 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही जन्मी।"[54] चित्रकार भोलाराम का 1900 ई. लगभग में एक संग्रह भी मिलता है जिसके सभी चित्र एक ही शैली के हैं।

गढ़वाल शैली पर गुलेर शैली का भी प्रभाव माना जाता है। इस शैली में नायिका भेद, शिव-पार्वती, गोवर्धन पर्वत धारण व कालिया दमन आदि, राधा कृष्ण की प्रेम लीलाओं पर आधारित चित्र व पशु-पक्षियों तथा प्रकृति के मनोहारी चित्रांकन के साथ व्यक्ति चित्र भी उत्कृष्ट रूप में चित्रांकित हुए हैं। इसके लिए काल की विपरीत दिशा ही कही जायेगी कि यह शैली संरक्षण के भाव में 19वीं शताब्दी के अंत तक लुप्तप्राय हो चली।

- "अजन्ता की लोच गढ़वाली शैली में भी है। गढ़वाली चित्रों में प्रकृति-चित्रण फूलों से लदी लताएँ, टेढ़े-मेढ़े पेड़ों से लिपटी हुई, प्रेम संगति की प्रतीती कराती हुई, मनोरम दृश्य उपस्थित करती है।"[55]
- इस शैली के चित्रों में दृश्य चित्रण बहुत सुंदर हुआ है जिनमें फूलों से लदे पेड़ों का दृश्य चित्रांकन को सुन्दरता प्रदान करता है। विशेष प्रकार का ऊँचा क्षितिज व बादलों का कलात्मक चित्रण सजीवता से इन चित्रों में अंकित हुआ है।
- गढ़वाली चित्रों की शैली में स्त्रियों का चित्रण छरहरे बदल वाली सुडौल तथा आकर्षक युवती के रूप में हुआ है जिसे बहुत कलात्मकता के साथ सुंदर आभूषणों तथा झीने वस्त्रों से चित्रित किया गया है।
- गढ़वाल शैली के चित्रांकन में एक महत्त्वपूर्ण विशेषता उच्च कुल की महिलाओं के चित्रण में माथे पर वक्राकर चन्दन का ऊपर की ओर लगा हुआ टीका है जिसकी वजह से यह शैली अलग से पहचानी जा सकती है।

➢ **तन्जौर शैली** :

चोल राजाओं द्वारा संरक्षित तंजौर प्राचीन काल से विभिन्न कलाओं का समृद्ध केंद्र रहा है। तन्जौर ललित कलाओं तथा राजाओं के विकास की सामग्री के लिए प्रसिद्ध है। 18वीं शताब्दी के अन्त में राजपूत राजाओं की अवस्था खराब होने पर आश्रय की खोज में भटकते आये चित्रकारों को राजा सरभोजी ने आश्रय प्रदान किया। इस समय रामायण एवं कृष्ण-लीला पर आधारित जो चित्राकृतियाँ बनायी गयी उसके लिए सर्वप्रथम एक दफ्ती पर इमली के गोंद के लेप से लीपा जाता था फिर उसके ऊपर एक या दो महीन कपड़े की तह चिपकाकर उस कपड़े पर चूने का लेप चढ़ाया जाता था। इसके पश्चात एक पत्थर से घिसाई कर इसे चिकना बनाकर ब्रुश से इस पर रेखाओं द्वारा चित्र अंकित किये जाते थे। जहाँ पर इन चित्रों में सोना व रत्न लगे होते थे वहीं इस पर एक सुखन नामक लेप चढ़ा दिया जाता था जिससे रत्न पक्की तरह चिपक जाए। इस प्रकार तन्जौर शैली के इन चित्रों को तैयार किया जाता था जो आधुनिक चित्रांकन शैली का विशिष्ट रूप है। सन 1855 में शिवाजी की मुत्यु के पश्चात ही राजवंश का अंत होने से चित्रकारों को राजसी संरक्षण न प्राप्त हो पाने के कारण यह कला विघटित होती गयी।

➢ **पटना या कम्पनी शैली** :

पटना शैली का जन्म 16 वीं शताब्दी में वहाँ के राजाओं व रईसों द्वारा आश्रित चित्रकारों से चित्र बनवाने के कारण हुआ। मुगल साम्राज्य की समाप्ति से चित्रकारों का भारत के विभिन्न स्थानों में जाकर बसना सर्वविदित है। उन्हीं चित्रकारों में कुछ सन् 1750-60 के समय में पटना आकर भी बसे। इस शैली के प्रमुख चित्रकारों में सेवकराम, हलासलाल, झुमकलाल, फ़कीरचन्द लाल तथा जयराम दास आदि आते है। पटना में लगभग दो

शताब्दियों तक जो चित्र बने वह पटना के बड़े व्यापारी केंद्र होने के कारण विलायत भेजे जाते रहे। पटना शैली आगे अंग्रेजो की प्रेरणा पर चलने लगी क्योंकि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रभावशील हो जाने के कारण अंग्रेजो ने जल रंगो की नवीन विधि चित्रकारों को सिखाकर उनसे उसी शैली के चित्र बनवाये। मुगल चित्रकारों द्वारा पटना शैली के निर्माण में अंग्रेजी विधियों के प्रयोग से पटना शैली में बने चित्रों में मुगल तथा पाश्चत्य शैली भी मिश्रित हो गयी। यही कारण है कि रायकृष्ण दास जी 'पटना शैली' नाम को अनुपयुक्त बताते हुए कहते हैं कि "यह कला तो पूरे देश बंगाल, पंजाब, महाराष्ट्र, नेपाल यहाँ तक कि पश्चिम में भी व्याप्त थी परन्तु विलायती विद्वानों ने इसे 'पटना शैली' नाम इसलिए दिया क्योंकि इसके कुछ प्रमुख चित्रकार पटना के थे। यह एक ऐसी लहर थी जो यूरोपीय और मुगल शैली के सम्मिश्रण से समस्त भारत में फैली और ईस्ट इंडिया कम्पनी के साथ-साथ विस्तार पाती रही इसलिए इसको 'पटना शैली' के स्थान पर 'कम्पनी शैली' कहा जाना चाहिए।"[56]

इस शैली के प्रमुख केंद्र पटना, लाहौर, दिल्ली, लखनऊ, वाराणसी, मुर्शिदाबाद, नेपाल, पूना तथा तंजौर आदि थे। इस शैली के प्रमुख चित्रकारों में लालचंद और गोपालचंद वाराणसी हैं जिन्होंने सामाजिक जीवन तथा पशु-पक्षियों आदि से सम्बन्धित कई चित्रों की रचना की। इस शैली की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

- जीवन के आम पहलू का चित्रण इस शैली की विशेषता है जिसमें मछली बेचने वाला, धोबी, लुहार, दर्जी, बुनकर, फेरीवाला, पंडित, माली आदि सभी का बहुत सुंदर चित्रांकन हुआ हैं।
- इस शैली के चित्रों में व्यक्ति-चित्रों की मात्रा भी अधिक है जो बड़े आकर्षक बन पड़े है।

- इस शैली को क्योंकि अंग्रेजो ने प्रचलित किया था इसलिए यहाँ की कमी और गरीबी की बातों के प्रचार के उद्देश्य से अंग्रेजो ने यहाँ की महानता, कला-कुशलता व सौन्दर्य बोध को दबाकर, अंग्रेजी सभ्यता, संस्कृति तथा कला को सर्वोच्च दिखाने के लिए छोटे-छोटे समाज के दैनिक जीवन के चित्र अंकित करवाये।
- इस शैली के चित्रों को अबरख के पन्नों पर बनाया जाता था जिसमें नवीनता के दर्शन होते हैं। हाथी दांत पर इन चित्रों का अंकन किया जाता था। जो आज भी मिलते हैं। ये चित्र आकार में कुछ छोटे हैं। इस शैली के कुछ चित्र अभी भी विभिन्न संग्रहालयों में सुरक्षित हैं।
- उत्सवों होली, दीपावली, निकाह, विवाह आदि का चित्रांकन भी इस शैली में सुचारू रूप से हुआ है जिनके चित्रण में कुछ महिलाएं दक्षाबीबी तथा सोना कुमारी भी आगे आयी हैं।

अत: कहा जा सकता है कि कलाएँ मनुष्य जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण हैं परन्तु उनमें काव्य तथा चित्र का महत्त्व अक्षुण्ण है। शब्दों तथा रंगो के माध्यम से अंकित चित्र कला के दोनों रूपों (काव्य तथा चित्र) को मजबूत कर देते हैं। रेखाओं और रंगों द्वारा चित्रांकन का आदिकाल से एक स्वरुप निर्मित होता है जिसमें चित्रांकन के स्तर पर देश, काल, तथा वातावरण के प्रभाव स्वरुप निरंतर बदलाव होता गया। समय के साथ यह कला और अधिक दृढ होकर अपने में काव्यग्रन्थों को समाहित करती चली गयी। चित्रांकन की परम्परा में चित्रांकन की विविध शैलियां जहाँ चित्रों के अंकन में विविध स्वरूपी हैं वहीं कई धार्मिक ग्रंथों व काव्य ग्रंथों यथा-भागवतपुराण, महाभारत, गीतगोविन्द, रसिकप्रिया, बिहारी सतसई आदि को सचित्र प्रस्तुत कर उन्हें कालजयी तथा और अधिक प्रभावशाली बना देती है साथ

ही काव्यग्रन्थों में अपनी शैलियों के चित्रांकन की परम्परा को चिरकाल तक सुरक्षित बना पाने में भी ये शैलियाँ महत्त्वपूर्ण है।

सन्दर्भः

1. वर्मा, श्याम बहादुर; वर्मा, मधु; विश्व सूक्ति कोश; प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण: 2006; पृष्ठ. 340
2. वही; पृष्ठ. 340
3. वही; पृष्ठ. 340
4. प्रसाद, कलिका (सं.); बृहत् हिंदी कोश; ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी; संस्करण: 1984
5. शुक्ल, रामचन्द्र; कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ; हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश शासन, राजर्षि पुरुषोत्तमदस टंडन हिंदी भवन, महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ; संस्करण: 1974; पृष्ठ. 69
6. प्रताप, रीता; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास; राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004; संस्करण: 2016; पृष्ठ.15
7. शुक्ल, रामचन्द्र; कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ; हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश शासन, राजर्षि पुरुषोत्तमदस टंडन हिंदी भवन, महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ; संस्करण: 1974; पृष्ठ. 70
8. ओझा, सीमा (सं.); भारतीय कला उद्भव और विकास; प्रकाशन विभाग, सी. जी. ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नयी दिल्ली- 110003; संस्करण 2015; पृष्ठ. 18

9. वर्मा, श्याम बहादुर; वर्मा, मधु; विश्व सूक्ति कोश; प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण: 2006; पृष्ठ. 18
10. गुप्त, नर्मदा प्रसाद (लेख); चौमासा; आदिवासी लोककला अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद, भोपाल; पृष्ठ.19
11. प्रताप, रीता; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास; राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004; संस्करण: 2016; पृष्ठ.24
12. माथुर, प्रीति; गोस्वामी, नव प्रभाकर; शिक्षा में नाटक और कला; अक्षर प्रकाशन, जयपुर; संस्करण: 2017; पृष्ठ.92
13. शर्मा, लोकेश चन्द्र; भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास; कृष्णा प्रकाशन मीडिया (प्रा.) लि., कृष्णा हाउस 11, शिवाजी रोड, मेरठ- 250001; संस्करण: 2017; पृष्ठ. 16
14. प्रताप, रीता; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास; राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004; संस्करण: 2016; पृष्ठ. 27
15. वर्मा, अविनाश बहादुर; वर्मा, अनिल; भारतीय चित्रकला का इतिहास; प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली 2343003; संस्करण: 2006; पृष्ठ. 33
16. प्रताप, रीता; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास; राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004; संस्करण: 2016; पृष्ठ. 39
17. वर्मा, अविनाश बहादुर; वर्मा, अनिल; भारतीय चित्रकला का इतिहास; प्रकाश बुक

डिपो, बड़ा बाजार, बरेली 2343003; संस्करण: 2006; पृष्ठ. 34

18. प्रताप, रीता; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास; राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004; संस्करण: 2016; पृष्ठ. 36
19. वही; पृष्ठ. 58
20. माथुर, प्रीति; गोस्वामी, नव प्रभाकर; शिक्षा में नाटक और कला; अक्षर प्रकाशन, जयपुर; संस्करण: 2017; पृष्ठ. 93
21. रामनाथ; मध्यकालीन भारतीय कलाएँ एवं उनका विकास; राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, ए-26/2 विद्यालय मार्ग, तिलक नगर, जयपुर- 4; संस्करण: 1973; पृष्ठ.2
22. उपाध्याय, भगवतशरण; भारत की चित्रकला की कहानी; राजपाल एण्ड सन्ज, 1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट- दिल्ली- 110006; संस्करण: 2013; पृष्ठ. 25
23. माथुर, प्रीति; गोस्वामी, नव प्रभाकर; शिक्षा में नाटक और कला; अक्षर प्रकाशन, जयपुर; संस्करण: 2017; पृष्ठ. 94 -95
24. प्रताप, रीता; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास; राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004; संस्करण: 2016; पृष्ठ. 107
25. प्रसाद, जनेश्वर; रीतिकालीन कलाएँ और युग जीवन; प्रयाग प्रकाशन, 164 ए, त्रिपाठी कालोनी, सोहबतियाबाग, इलाहाबाद; संस्करण 1990; पृष्ठ. 35
26. उपाध्याय, भगवतशरण; भारत की चित्रकला की कहानी; राजपाल एण्ड सन्ज, 1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट- दिल्ली- 110006; संस्करण: 2013; पृष्ठ. 34

27. वही; पृष्ठ. 38

28. वही; पृष्ठ. 38

29. उपाध्याय, भगवतशरण; भारत की चित्रकला की कहानी; राजपाल एण्ड सन्ज, 1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट- दिल्ली- 110006; संस्करण: 2013; पृष्ठ. 39

30. शर्मा, लोकेश चन्द्र; भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास; कृष्णा प्रकाशन मीडिया (प्रा.) लि., कृष्णा हाउस 11, शिवाजी रोड, मेरठ- 250001; संस्करण: 2017; पृष्ठ. 59

31. रामनाथ; मध्यकालीन भारतीय कलाएँ एवं उनका विकास; राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, ए-26/2 विद्यालय मार्ग, तिलक नगर, जयपुर- 4; संस्करण: 1973; पृष्ठ.9

32. उपाध्याय, भगवतशरण; भारत की चित्रकला की कहानी; राजपाल एण्ड सन्ज, 1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट- दिल्ली- 110006; संस्करण: 2013; पृष्ठ. 42

33. माथुर, प्रीति; गोस्वामी, नव प्रभाकर; शिक्षा में नाटक और कला; अक्षर प्रकाशन, जयपुर; संस्करण: 2017; पृष्ठ. 100

34. वही; पृष्ठ. 101

35. प्रताप, रीता; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास; राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004; संस्करण: 2016; पृष्ठ. 115

36. वही; पृष्ठ. 116

37. उपाध्याय, भगवतशरण; भारत की चित्रकला की कहानी; राजपाल एण्ड सन्ज, 1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट- दिल्ली- 110006; संस्करण: 2013; पृष्ठ. 26

38. शर्मा, लोकेश चन्द्र; भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास; कृष्णा प्रकाशन

मीडिया (प्रा.) लि., कृष्णा हाउस 11, शिवाजी रोड, मेरठ- 250001; संस्करण: 2017; पृष्ठ. 60

39. प्रताप, रीता; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास; राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004; संस्करण: 2016; पृष्ठ. 120
40. रामनाथ; मध्यकालीन भारतीय कलाएँ एवं उनका विकास; राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, ए-26/2 विद्यालय मार्ग, तिलक नगर, जयपुर- 4; संस्करण: 1973; पृष्ठ.3
41. प्रताप, रीता; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास; राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004; संस्करण 2016; पृष्ठ. 186
42. वही; पृष्ठ. 206
43. वही; पृष्ठ. 200
44. शर्मा, लोकेश चन्द्र; भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास; कृष्णा प्रकाशन मीडिया (प्रा.) लि., कृष्णा हाउस 11, शिवाजी रोड, मेरठ- 250001; संस्करण: 2017; पृष्ठ. 80
45. उपाध्याय, भगवतशरण; भारत की चित्रकला की कहानी; राजपाल एण्ड सन्ज, 1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट- दिल्ली- 110006; संस्करण: 2013; पृष्ठ. 34
46. शर्मा, लोकेश चन्द्र; भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास; कृष्णा प्रकाशन मीडिया (प्रा.) लि., कृष्णा हाउस 11, शिवाजी रोड, मेरठ- 250001; संस्करण: 2017; पृष्ठ. 99
47. वही; पृष्ठ. 110

48. प्रताप, रीता; भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास; राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004; संस्करण: 2016; पृष्ठ. 25

49. शर्मा, लोकेश चन्द्र; भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास; कृष्णा प्रकाशन मीडिया (प्रा.) लि., कृष्णा हाउस 11, शिवाजी रोड, मेरठ- 250001; संस्करण: 2017; पृष्ठ. 114

50. वही; पृष्ठ. 114

51. शर्मा, लोकेश चन्द्र; भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास; कृष्णा प्रकाशन मीडिया (प्रा.) लि., कृष्णा हाउस 11, शिवाजी रोड, मेरठ- 250001; संस्करण: 2017; पृष्ठ. 116

52. वही; पृष्ठ. 117

53. वही; पृष्ठ. 121

54. गैरोला, वाचस्पति; भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2008; पृष्ठ. 215

55. सीमा ओझा (सं.); भारतीय कला उद्भव और विकास; प्रकाशन विभाग, सी. जी. ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नयी दिल्ली- 110003; संस्करण: 2015; पृष्ठ. 128

56. दास, रायकृष्ण; भारत की चित्रकला; भारत-दर्पण ग्रंथमाला, प्रकाशक तथा विक्रेता भारती भण्डार, इलाहाबाद ; संस्करण: 1996; पृष्ठ. 110